252.5 ख
धर्म । मि

धम्मपद

[मूल पालि, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद]

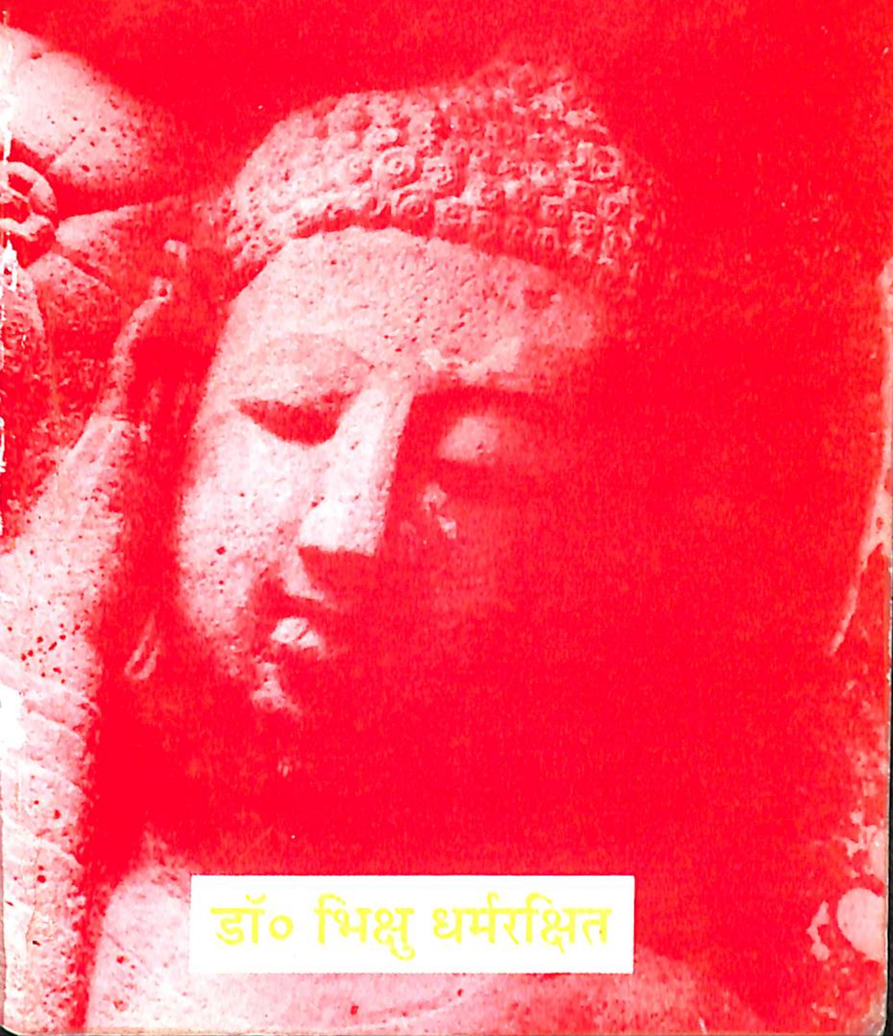

डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित

धम्मपद

[मूल पालि, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद]

अनुवादक

डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित

त्रिपिटकाचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, बंगलौर,
वाराणसी, पुणे, पटना

तृतीय संस्करण: वाराणसी, १९८३
पुनर्मुद्रण: दिल्ली, १९९३, १९९९, २००२

© मोतीलाल बनारसीदास

मोतीलाल बनारसीदास
४१ यू०ए० बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
८ महालक्ष्मी चैम्बर, २२ भुलाभाई देसाई रोड, मुम्बई ४०० ०२६
२३६ नाइंथ मेन III ब्लाक, जयनगर, बंगलौर ५६० ०११
सनाज प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड, पुणे ४११ ००२
१२० रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, चेन्नई ६०० ००४
८ केमेक स्ट्रीट, कोलकाता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

252.5 रव
~~[illegible]~~
[illegible] | भि

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

ग्रन्थ-परिचय

भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश पालिभाषा में दिए थे। उनके उपदेशों को भिक्षु-भिक्षुणियों ने कंठाग्र कर लिया था और उनके महापरिनिर्वाण (ई० पूर्व ५४३) के एक मास के उपरान्त ही मगध की राजधानी राजगृह की सप्तपर्णी गुहा में ५०० भिक्षुओं ने एकत्र होकर बुद्ध-वचनों को संकलित किया था। इस संकलन का नाम 'तिपिटक' (=त्रिपिटक) रखा गया, क्योंकि सम्पूर्ण बुद्ध-वचन तीन भागों या पिटकों में बाँट दिए गए। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सुत्त पिटक, (२) विनय पिटक और (३) अभिधम्म पिटक। पिटक का अर्थ पेटारी या मंजूषा है। पठन-पाठन की सुविधा के लिए इन तीनों पिटकों को भी अनेक भागों में विभाजित किया गया। उन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—

१—सुत्त पिटक में निम्नलिखित पाँच निकाय हैं—

१. दीघनिकाय, २. मज्झिम निकाय, ३. संयुत्त निकाय, ४. अंगुत्तर निकाय और ५ खुद्दक निकाय।

खुद्दक निकाय में १५ ग्रन्थ हैं—

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस और (१५) चरिया पिटक।

२. विनय पिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त है—

(१) पाराजिका,
(२) पाचित्तिय,
(३) महावग्ग,
(४) चुल्लवग्ग,
(५) परिवार।

३. अभिधम्मपिटक में निम्नलिखित ७ ग्रन्थ हैं —

(१) धम्मसंगणी, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक और (७) पट्ठान ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'धम्मपद' तिपिटक के अन्तर्गत खुद्दक निकाय का दूसरा ग्रन्थ है ।

धम्मपद की विशेषता—धम्मपद पाली साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है । बौद्ध-संसार में इसका उसी प्रकार प्रचार है जिस प्रकार कि हिन्दू-संसार में 'गीता' का । यद्यपि गीता का एक ही कथानक है और श्रोता भी एक ही; किन्तु 'धम्मपद' के विभिन्न कथानक और विभिन्न श्रोता हैं । गीता का उपदेश अल्पकाल में ही समाप्त किया गया था, किन्तु धम्मपद तथागत के पैंतालीस वर्षों के उपदेश से संगृहीत है ।

धम्मपद में कुल ४२३ गाथायें हैं, जिन्हें भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के समय से लेकर परिनिर्वाण पर्यन्त समय-समय पर उपदेश देते हुए कहा था । धम्मपद एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी प्रत्येक गाथा में बुद्धधर्म का सार भरा हुआ है । जिन गाथाओं को सुनकर आजतक विश्व के अनगिनत दुःख-संतप्त प्राणियों का उद्धार हुआ है । इन गाथाओं में शील, समाधि, प्रज्ञा, निर्वाण आदि का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन है, जिन्हें पढ़ते हुए एक अद्भुत संवेग, धर्मरस, शान्ति, ज्ञान और संसार-निर्वेद का अनुभव होता है ।

धम्मपद बौद्ध साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है । श्रीलंका में तो प्रत्येक भिक्षु को अपनी उपसम्पदा से पूर्व इसे कंठाग्र करके सुनाना पड़ता है ।

श्री अल्बर्ट जे० एडमण्ड ने 'धम्मपद' के अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखा है—

'यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई, तो वह यह है ।''

''इन गाथाओं ने अनेक विचारकों के हृदय में चिन्तन की आग जलायी है । इन्हीं से अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मंगोलिया के भयानक कान्तार और हिमालय की अलंध्य चोटियाँ लांघकर भगवान् बुद्ध के चरणों से पूत भारत-भूमि के दर्शनार्थ आए । इन्हीं को महाराज अशोक ने--जिन्होंने

प्राणदण्ड का निषेध किया, दासप्रथा को बन्द किया, मनुष्यों और पशुओं तक के लिए अस्पताल खोले—शिलालेखों पर अंकित कराया। आज दो हजार वर्ष से और ईसाइयत की संस्कृति के प्रचार होते रहने पर भी, यूरोप और अमेरिका के सभी विद्यामन्दिरों में—कोपेनहेगन से कैम्ब्रिज तक और शिकागो से सेण्ट-पीटर्सबर्ग (=लेनिनग्राद) तक—यह यूरोपियन और अमेरिकन लोगों द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती हैं।"

पूज्य भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी का कथन बिल्कुल ठीक है कि "एक पुस्तक को और केवल एक पुस्तक को जीवन भर साथी बनाने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई तो विश्व के पुस्तकालय में आपको 'धम्मपद' से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।"

धम्मपद की गाथायें सरल और मर्मस्पर्शिनी हैं। ये अनायास ही कंठाग्र भी हो जाती हैं।

धम्मपद २६ वर्गों में बँटा हुआ है। इसमें मूलतः ४२३ गाथायें आई हुई हैं, किन्तु धम्मपदट्ठकथा के अनुसार इनकी संख्या ४२४ हो जाती है, क्योंकि गाथा संख्या ४१६ से सम्बन्धित दो कथायें हैं। दोनों ही राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में कही गयी थीं, जिनमें एक जटिल स्थविर के सम्बन्ध की है और दूसरी जोतिय स्थविर के सम्बन्ध की। इस प्रकार धम्मपद में गाथाओं की संख्या मूल में ४२३ ही हैं, किन्तु अट्ठकथा के अनुसार ४२४ हो जाती हैं।

आज की विषम-परिस्थिति में धम्मपद के प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जितना ही इसका प्रचार होगा, उतना ही मानव-जगत् का कल्याण होगा।

धम्मपद की विषय-वस्तु—जैसा कि हमने ऊपर कहा है धम्मपद २६ वर्गों में विभक्त है और प्रत्येक वर्ग का वर्ण्य विषय भिन्न है। पहले वर्ग (यमक) में दो-दो बातों को लेकर उनके कृष्ण और शुक्ल पक्ष को बतलाया गया है। जैसे कि बुरे मन से किए गए कार्य का फल बुरा होता है और पवित्र मन से किए गए कार्य का फल सुखद। गाली देने से वैर शान्त नहीं होता, किन्तु उसे मन में न करने से शान्त हो जाता है। वैर कभी वैर से शान्त नहीं

होता, प्रत्युत वैर मैत्री से ही शान्त होता है और यह सदा का नियम है। जो बहुत सी संहिताओं का पाठ करता है, किन्तु उनके अनुसार आचरण नहीं करता तो वह दूसरों की गौवों को गिनने वाले ग्वाले की भाँति है, किन्तु जो अल्पभी पाठ करता है और धर्म का आचरण करता है तो वह श्रामण्य फल का भागी होता है। इस वर्ग में २० गाथायें हैं।

दूसरे अप्पमादवग्ग में अप्रमाद को अमृतपद (=निर्वाण) कहा गया है। कहते हैं कि इस वर्ग की पहली गाथा को ही सुनकर सम्राट अशोक बौद्ध हुआ था। अप्रमाद से ही इन्द्र (=मघवा) देवताओं में श्रेष्ठ बना। जो प्रमाद नहीं करता, वह निर्वाण के पास पहुँचा हुआ है। इस वर्ग में १२ गाथायें हैं।

तीसरे चित्तवग्ग में चित्त की चंचलता और लघुता का वर्णन है। उसका दमन करना चाहिए। दमन किया हुआ चित्त सुखावह होता है। मिथ्यादृष्टि में लगा हुआ चित्त सबसे बुरा होता है किन्तु सम्यक्‌दृष्टि में लगा हुआ चित्त सबसे श्रेष्ठ होता है। इस वर्ग में ११ गाथायें हैं।

चौथे पुप्फवग्ग में पुष्प चुनने की भांति अत्यधिक पुण्य-कर्म करने का निर्देश है। व्यक्ति को चाहिए कि दूसरों के दोषों को न देखें, प्रत्युत अपने ही कृत्याकृत्य का अवलोकन करे। पुष्प की गन्ध उल्टी हवा नहीं जाती, किन्तु सज्जनों की सुगन्ध उल्टी हवा भी जाती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है। शील की गन्ध सभी गन्धों से उत्तम है। इस वर्ग में १६ गाथायें है।

पांचवें बालवग्ग में कहा गया है कि मूर्खों का साथ न करे। मूर्ख वही है जो अपने को बुद्धिमान् समझता है। यदि मूर्ख जीवनभर भी पण्डित की सेवा करता है तो भी वह करछुल के दाल के स्वाद को न जानने के समान धर्म नहीं जान पाता, किन्तु पण्डित शीघ्र ही उसी प्रकार धर्म जान लेता है जैसे कि जीभ दाल के स्वाद को जान लेती है। मूर्ख पाप कर्म करते हुए अपने ही अपनी शत्रुता करता है। जब तक पाप अपना फल नहीं देता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान मीठा समझता है, किन्तु जब पाप अपना फल देने लगता है तब मूर्ख दुःख को प्राप्त होता है। इस वर्ग में १६ गाथायें हैं।

छठें पण्डितवग्ग में मेधावी, प्रज्ञावान् लोगों का वर्णन है। बुरे मित्रों का साथ नहीं करना चाहिए और न नीच पुरुषों का। कल्याण मित्रों का साथ

करना चाहिए, उत्तम पुरुषों का साथ करना चाहिए। जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते। इस वर्ग में १४ गाथायें हैं।

सातवें अरहन्तवग्ग में अर्हतों (=ज्ञानियों) का वर्णन है। गाँव या जंगल में, नीचे या ऊँचे, जहाँ कहीं अर्हत् विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय है, किन्तु वहाँ अर्हत् ही विचरण करते हैं, कामभोगी जन वहाँ नहीं रमण करते। अर्हत् पृथ्वी के समान क्षुब्ध नहीं होता वह इन्द्रकील के समान अकम्प्य होता है। उसके काय, मन और वचन शान्त होते हैं। इस वर्ग में १० गाथायें हैं।

आठवें सहस्सवग्ग में हजार की उपमा से उपदेश दिये गये हैं। लड़ाई के मैदान में हजारों मनुष्यों को जीतने से स्वयं अपने को जीतना उत्तम विजय है जो अभिवादन करने के स्वभाव वाला है, जो वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल। दुराचारी के सौ वर्ष के जीने से सदाचारी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है। इस वर्ग में १६ गाथायें हैं।

नवें पापवग्ग में पाप-कर्मों से मन को हटाकर पुण्य-कर्मों में लगाने को कहा गया है। यदि व्यक्ति एक बार पाप कर ले तो उसे बार-बार न करे और यदि व्यक्ति पुण्य करे तो उसे बार-बार करे क्योंकि पुण्य सुख का ही नाम है। जो शुद्ध व्यक्ति पर दोष लगाता है वह उसी पर वैसे ही आ पड़ता है जैसे कि सूक्ष्म धूल हवा के आने के रुख फेंकने से वह फेंकने वालों पर ही पड़ती है। मनुष्य आकाश, समुद्र के बीच, पर्वतों की गुफाओं में भी जाकर पाप-कर्म से नहीं छूट सकता, और न तो उन स्थानों में जाकर छिपने से मृत्यु से ही बच सकता है। इस वर्ग में १३ गाथायें हैं।

दसवें दण्डवग्ग में कहा गया है कि सभी दण्ड से भय खाते हैं, इसलिए सबको अपने समान समझ न तो किसी को मारे और न मारने के लिए किसी को प्रेरित करे। सभी प्राणी सुख चाहते हैं, जो अपने सुख की इच्छा से किसी की हिंसा करता है तो वह मरकर सुख नहीं पाता। मूर्ख पाप कर्म करते हुए उसे समझता नहीं है, किन्तु वह अपने ही उस कर्म से आग से जलने की भाँति

अनुताप करता है। इस वर्ग में १७ गाथायें हैं।

ग्यारहवें जरावग्ग में जरा से सम्बन्धित उपदेश हैं। यह शरीर जीर्ण, रोगों का घर है। यह क्षणभंगुर शरीर नष्ट हो जाता है। जीवन तो मृत्यु-पर्यन्त ही है। यह शरीर जीर्ण हो जाता है, राजा का सुचित्रित रथ भी जीर्ण हो जाता है किन्तु सत्पुरुषों का धर्म जीर्ण नहीं होता। इस वर्ग में वह प्रसिद्ध गाथा भी है जिसे कि भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरन्त बाद बोधिवृक्ष के नीचे कहा था और यह बुद्ध की प्रथम वाणी थी—'बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा। इस कायारूपी गृह को बनाने वाली तृष्णा को खोजते बार-बार दुःखमय जन्म में पड़ता रहा। अब उसे मैंने देख लिया। उसकी सारी कड़ियाँ भग्न हो गयीं। गृह का शिखर गिर गया। चित्त संस्कार रहित हो गया। अर्हत्व की प्राप्ति हो गई। इस वर्ग में ११ गाथायें हैं।

बारहवें अत्तवग्ग में कहा गया है कि पहले अपने को उचित कार्य में लगावे तब फिर दूसरे को उपदेश दे। ऐसे उसे कष्ट नहीं होगा। व्यक्ति अपना स्वामी आप है, भला दूसरा उसका स्वामी कौन होगा? अपना भली प्रकार दमन कर लेने पर वह निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। पराये के बहुत हित के लिए भी अपने हित की हानि न करे। अपने अर्थ की बात को समझ कर अपने ही अर्थ के साधन में लग जाय। इस वर्ग में १० गाथायें हैं।

तेरहवें लोकवग्ग में कहा गया है कि नीच-कर्म न करे, प्रमाद में न रहे, आवागमन के चक्र में न पड़े। उठे और धर्म का आचरण करे। धर्मचारी इस लोक और परलोक में सुख पाता है। जो पहले भूल करके पीछे भूल नहीं करता, वह बादलों से रहित चन्द्रमा की भाँति संसार को प्रकाशित करता है। झूठ बोलने से बढ़कर पाप नहीं है। झूठ बोलने वाले के लिए कोई भी कार्य अकरणीय नहीं है। इस वर्ग में १२ गाथायें हैं।

चौदहवें बुद्धवग्ग में बुद्ध को अनन्त, अगोचर कहा गया है। मनुष्य का जन्म पाना कठिन है। उसका जीवित रहना भी कठिन है, सद्धर्म का श्रवण कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है। सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यह बुद्धों की शिक्षा

है । बुद्ध लोग निर्वाण को उत्तम बताते हैं । वृक्ष, चैत्य आदि की शरण जाना उत्तम नहीं, इनसे सब दुःखों से मुक्ति नहीं मिलती किन्तु बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाना ठतम है । यह शरण कल्याणकर है । यह शरण उत्तम है । इन शरणों में जाकर सारे दुःखों से व्यक्ति मुक्त हो जाता है । बुद्धों का जन्म सुखदायक होता है । इस वर्ग में १८ गाथायें हैं ।

पन्द्रहवें सुखवग्ग में भगवान् ने कहा है कि मैं वैरियों के बीच में रहकर भी सुख से विहार करता हूँ । विजय से वैर बढ़ता है । जो जयपराजय से रहित है वह सुखी एवं उपशान्त है । भूख सबसे बड़ा रोग है । संस्कार सबसे दुःखदायक हैं और निर्वाण परम सुख है । आरोग्य परम लाभ है; सन्तोष परम धन है । इस वर्ग में १२ गाथायें हैं ।

सोलहवें पियवग्ग में कहा गया है कि प्रियों को न देखना दुःखदायी होता है और ऐसे ही अप्रियों को देखना । इसलिए प्रिय न बनाए । प्रिय से शोक और भय उत्पन्न होता है । ऐसे ही प्रेम, रति, काम और तृष्णा से, किन्तु इनसे रहित को शोक और भय नहीं होते । इस लोक से परलोक में जाने पर पुण्य व्यक्ति को उसी प्रकार अभिनन्दन करते हैं, जैसे कि प्रवास से आये व्यक्ति के घरवाले तथा हित-मित्र अभिनन्दन करते हैं । इस वर्ग में १२ गाथायें हैं ।

सत्रहवें कोधवग्ग में क्रोध को छोड़ने का उपदेश दिया गया है । अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता से जीते, कंजूस को दान से जीते और झूठ बोलने वाले को सत्य भाषण से जीते । सत्य बोले, क्रोध न करे, मांगने पर थोड़े में से भी दे—इन तीन बातों से व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । सबकी निन्दा होती है, जो बहुत बोलता है, उसकी भी और जो कम बोलता है उसकी भी । कभी भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ और न होगा जिसकी कि प्रशंसा ही प्रशंसा या निन्दा ही निन्दा हो । इस वर्ग में १४ गाथायें हैं ।

अठारहवें मलवग्ग में अपने चित्त मल को साफ कर अपनी रक्षा के लिए द्वीप बनाने का उपदेश है । सोनार के चाँदी के मैल को धीरे-धीरे तपा कर दूर करने की भाँति क्रमशः धीरे-धीरे अपने चित्त मल को निकाल दे । जो व्यक्ति दूसरों के दोष को देखता है, उसके आश्रव बढ़ते हैं । जिस प्रकार

आकाश में पद-चिह्न नहीं, वैसे ही तथागत प्रपंच रहित हैं। इस वर्ग में २१ गाथायें हैं।

उन्नीसवें धम्मट्ठवग्ग में धर्म में स्थित रहने वालों की प्रशंसा की गई है। पण्डित, धर्मधर, स्थविर, श्रमण, भिक्खु, मुनि, आर्य कौन होता है ? इस वर्ग में बतलाया गया है। मौन रहने से कोई मुनि नहीं होता, जो हिंसा करता है वह आर्य नहीं होता, भिक्षा करने से कोई भिक्खु नहीं होता, सिर मुड़ा लेने से कोई श्रमग नहीं होता, सिर के बाल पक जाने से कोई स्थविर नहीं होता, प्रत्युत जो सभी बुराइयों से रहित है, वह इन गुणों से युक्त कहलाता है। इस वर्ग में १७ गाथायें हैं।

बीसवें मग्गवग्ग में मार्गों में आर्य अष्टांगिक मार्ग को श्रेष्ठ बतलाया गया है। चार आर्य सत्य सत्यों में श्रेष्ठ हैं। विराग धर्मों में और चक्षुष्मान् (=बुद्ध) मनुष्यों में। कार्य तो तुम्हें ही करना है, तथागत केवल मार्ग बताने वाले हैं। सभी संस्कार अनित्य और दुःख हैं। सभी धर्म अनात्मा हैं। मूर्ख ऐसा सोचता है कि मैं यहाँ वर्षा में रहूँगा, यहाँ जाड़े और गर्मी में किन्तु अपने जीवन के विघ्न को नहीं बूझता। मृत्यु के आने पर पुत्र, माता, पिता और भाई-बंधु कोई भी नहीं बचा सकते, इसलिए निर्वाण को प्राप्त करने का शीघ्र प्रयत्न करे। इस वर्ग में १७ गाथायें हैं।

इक्कीसवें पकिण्णकवग्ग में कुछ फुटकर उपदेश हैं। यदि थोड़े से सुख के त्याग से महान् सुख देखे तो धीर व्यक्ति को चाहिए कि उस थोड़े सुख को त्याग दे। जो कायगतास्मृति, बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, अहिंसा और भावना में लगे रहते हैं वे ही सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं। श्रद्धावान्, शीलवान्,यश और भोग से युक्त व्यक्ति जिस-जिस स्थान में जाता है, वहीं सम्मानित होता है। इस वर्ग में १६ गाथायें हैं।

बाइसवें निरयवग्ग में नरक में उत्पन्न होने वालों का वर्णन है। कहा गया है—असत्यवादी नरक में जाता है और वह भी जो कि करके नहीं किया कहता है। मर कर दोनों की गति समान होती है। जो लोग लज्जा करने की बात में लज्जा नहीं करते और लज्जा न करने की बात में लज्जा करते हैं वे

मिथ्या दृष्टि वाले व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त होते हैं। ऐसे ही जो भय की बातों में अभय और अभय की बातों में भय रखते हैं। किन्तु जो ऐसे नहीं हैं वे सम्यक् दृष्टि वाले व्यक्ति सुगति को प्राप्त होते हैं। इस वर्ग में १४ गाथायें हैं।

तेईसवें नागवग्ग में नाग की उपमा देकर उपदेश दिया गया है। भगवान् ने कहा है कि जिस प्रकार नाग (=हाथी) युद्धभूमि में धनुष से गिरे बाण को सहन करता है वैसे ही—मैं कटुवाक्यों को सहन करूँगा, क्योंकि संसार में दुःशील लोग ही अधिक हैं। संसार में माता और पिता की सेवा सुखकर है। वृद्धावस्था तक शील का पालन सुखकर है। ज्ञान का लाभ सुखकर है और पापों का न करना सुखकर है। इस वर्ग में १४ गाथायें हैं।

चौबीसवें तण्हावग्ग में तृष्णा का वर्णन है। तृष्णा के कारण ही व्यक्ति दुःखों में पड़ा है। यह सभी पापों की जननी है। जो इससे रहित है, उसे शोक नहीं होता। इसलिए तृष्णा की जड़ को उसी प्रकार खोद डाले जैसे कि खस खोजने वाला खस की जड़ को खोद डालता है। इसी वर्ग में भगवान् ने कहा है— मैं सर्वजयी एवं सर्वज्ञ हूँ। सर्वत्यागी और तृष्णा का क्षय कर विमुक्त हूँ, मैंने स्वयं ज्ञान प्राप्त किया है, फिर अपना गुरु किसे बतलाऊँ? धर्म का दान सब दानों में श्रेष्ठ है। धर्म-रस सब रसों में श्रेष्ठ है; धर्म की रति सब रतियों में उत्तम है, और तृष्णा का क्षय सब दुःखों को जीत लेता है। इस वर्ग में २६ गाथायें हैं।

पच्चीसवें भिक्खुवग्ग में भिक्षु का परिचय दिया गया है और बतलाया गया है कि वास्तविक भिक्षु कौन है? भिक्षु को चाहिए कि वह इन्द्रियों में संयम करे, सन्तोषी हो और प्रातिमोक्ष की रक्षा करे। शुद्ध जीविका वाला हो, निरालस रहे मित्रों का साथ करे। जो भिक्षु बुद्धशासन में प्रमादमुक्त हो संस्कारों के उपशमन में लगता है वह शान्तपद को पा लेता है। जो तरुण भिक्षु बुद्ध-शासन में जुटता है वह मेघ से मुक्तचन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है। इस वर्ग में २३ गाथायें हैं।

छब्बीसवें और अन्तिम ब्राह्मणवग्ग में ब्राह्मणों के लक्षण तथा परिभाषा बतलायी गई है। ब्राह्मण का अर्थ है निष्पाप, सभी पापों से रहित व्यक्ति,

ज्ञानी, अर्हत् । माता की योनि से उत्पन्न होने मात्र से कोई बाह्मण नहीं होता, वह तो केवल 'भो वादी' है । जो अकिंचन और अनासक्त है, वही ब्राह्मण है । जिसमें इसलोक और परलोक के सम्बन्ध में कामना नहीं है, जो अनासक्त और तृष्णा रहित है, वही ब्राह्मण है । एक जटाधारी को भगवान् ने फटकारते हुए कहा था—"हे मूर्ख ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा ? मृगचर्म को पहनने से क्या होगा ? तेरा भीतर तो राग आदि मलों से भरा है, बाहर क्या धोता है ?" इस वर्ग में ४१ गाथायें हैं ।

धम्मपद की विषय-वस्तु के विवरण से स्पष्ट है कि उसमें नीति के वे सभी आदर्श संग्रहित हैं जो भारतीय संस्कृति और समाज की सामान्य सम्पत्ति हैं ।

विभिन्न भाषाओं में धम्मपद—मूल धम्मपद पालि में ही था, किन्तु पीछे इसका भाषान्तर संस्कृत, प्राकृत, तिब्बती, चीनी, तुर्फानी, मंगोलियन आदि अनेक भाषाओं में विद्वानों ने किया । प्रायः भिक्षु निकायों के अनुसार इसके अनेक संस्करण हुए और उनमें कम-बेसी गाथायें इच्छानुसार कर दी गईं । अभी तक धम्मपद के जो संस्करण उक्त भाषाओं में प्राप्त हुए हैं, उनमें मुख्य चार हैं—(१) प्राकृत धम्मपद, (२) गाथा संस्कृत या मिश्रित संस्कृत का धम्मपद, (३) तुर्फान में प्राप्त संस्कृत धम्मपद और (४) चीनी धम्मपद ।

प्राकृत धम्मपद खोतान में खरोष्ट्री लिपि में प्राप्त हुआ है । इसमें १२ अध्याय और २५१ गाथायें हैं । कुछ वर्गों में अधिक गाथायें हैं और कुछ मे बहुत ही कम । जैसे चित्तवग्ग, बालवग्ग और तण्हावग्ग में क्रमशः ५, ७ और ७ गाथायें हैं । विद्वानों का मत है कि यह धम्मपद अपूर्ण है ।

गाथा-संस्कृत के धम्मपद का कुछ अंश 'महावस्तु' में प्राप्त है, किन्तु उसमें भी सहस्स वग्ग की १६ गाथायें ही उद्धृत हैं, जब कि मूलपालि धम्मपद के सहस्सवग्ग में २४ गाथायें हैं ।

संस्कृत धम्मपद तुर्फान में पाया गया है । इसमें २६ के स्थान पर ३२ वग्ग हैं । जो पालि धम्मपद से ६ अधिक हैं । इसी धम्मपद का तिब्बती अनुवाद भी मिलता है जो ८१७-८४२ ईस्वी में किया गया था । श्री रामहिल

ने इसका अनुवाद 'उदान वर्ग' नाम से किया है।

चीनी धम्मपद श्री फ-ख्यू-किङ् का है। यह संस्कृत से २२३ ईस्वी में चीनी में अनूदित हुआ था। इसमें ३९ अध्याय (वर्ग) हैं और ७५२ गाथायें। इस प्रकार यह मूल पालि धम्मपद से वृहद् है।

चीनी, तिब्बती, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के पुराने अनुवादों के अतिरिक्त वर्तमान समय में संसार की सभी सभ्य भाषाओं में धम्मपद के अनुवाद उपलब्ध हैं, जो इसके महत्त्व और प्रचार की प्रधानता के द्योतक हैं। हिन्दी में भी धम्मपद के अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम हिन्दी अनुवाद सन् १९०८ में प्रकाशित हुआ था, जिसके अनुवादक भदन्त ऊ चन्द्रमणि महास्थविर थे। स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और भदन्त आनन्द कौसल्यायन के अतिरिक्त मेरे द्वारा अनूदित धम्मपद के भी विभिन्न संस्करण विभिन्न आकारों में प्रकाशित हो चुके हैं। संक्षिप्त कथाओं के साथ भी मेरे द्वारा अनूदित धम्मपद का एक संस्करण सन् १९५३ में प्रकाशित हुआ था, जो बड़ा लोकप्रिय हुआ और अब तक उसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। संस्कृत छाया सहित अब यह नवीन संस्करण है, जिसे पालि भाषा के पठन-पाठन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

छन्द—धम्मपद गाथाओं में है। इन्हें हम श्लोक कह सकते हैं। ये गाथायें अनुष्ठुभ्, त्रिष्ठुभ् तथा इन्द्रवज्रा छन्दों में हैं, किन्तु अधिकांश गाथायें अनुष्ठुभ् छन्द में ही हैं। इनमें पिंगल शास्त्र का ध्यान कम दिया गया है। गाथाओं में अक्षरों की संख्या कम-वेश भी हैं। सन्धि-नियमों की शिथिलता तो पालि की अपनी विशेषता है, क्योंकि ये सन्धि-नियम पालि भाषा के आधार पर बने हैं न कि संस्कृत के समान व्याकरण के अनुसार भाषा की रचना हुई है। धम्मपद की गाथायें बड़ी श्लिष्ट, सरल एवं सरस हैं। रचना-विधान बड़ा ही स्वाभाविक एवं हृदय के उद्गार के रूप में प्रस्फुटित जान पड़ता है। इन्हें स्मरण, धारण, कंठस्थ करना तथा पढ़ना-पढ़ाना बड़ा ही आसान है। ये सभी गाथायें गेय हैं। उपमा, उपमेय, उदाहरण, दृष्टान्त से भरपूर ये गाथायें वास्तव में भगवान् बुद्ध की ज्ञानानुभूतिजन्य सर्वोत्तम सूक्तियाँ भी हैं। इनमें प्रगट भावों के हृदयंगम

से ही व्यक्ति को विरक्ति उत्पन्न हो आती है और वह शुभ-कर्मों की ओर अग्रसर होता है। इन पंक्तियों का लेखक 'धम्मपद' को ही पढ़कर गृहत्याग करने के लिए निश्चय किया था और फलस्वरूप भिक्षु होकर बुद्ध-शासन को अपना जीवन समर्पित कर दिया।

हमें प्रसन्नता है कि धम्मपद का यह संस्करण श्री नरेन्द्र कुमार जैन के प्रयत्न से प्रकाशित हो रहा है। मेरे अस्वस्थ रहते हुए भी उन्होंने अनेक बार मेरे पास आकर आग्रह किया कि मैं इसे प्रस्तुत करूँ। उन्होंने यथाशीघ्र इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर पालि भाषा के पाठकों, जिज्ञासुओं तथा छात्रों का बड़ा कल्याण किया है। ऐसे कल्याणमित्र सबके धन्यवाद के पात्र हैं। साधुवाद !

सारनाथ, वाराणसी
९ दिसम्बर, १९७६

—भिक्षु धर्मरक्षित

वग्ग-सूची

	पृष्ठ
१—यमकवग्गो	१
२—अप्पमादवग्गो	८
३—चित्तवग्गो	१२
४—पुप्फवग्गो	१७
५—बालवग्गो	२१
६—पण्डितवग्गो	२६
७—अरहन्तवग्गो	३०
८—सहस्सवग्गो	३२
९—पापवग्गो	३३
१०—दण्डवग्गो	४३
११—जरावग्गो	४८
१२—अत्तवग्गो	५३
१३—लोकवग्गो	५५
१४—बुद्धवग्गो	५९
१५—सुखवग्गो	६४
१६—पियवग्गो	६८
१७—कोधवग्गो	७२
१८—मलवग्गो	७६
१९—धम्मट्ठवग्गो	८२
२०—मग्गवग्गो	८७
२१—पकिण्णकवग्गो	९२
२२—निरयवग्गो	९७
२३—नागवग्गो	१०१
२४—तण्हावग्गो	१०६
२५—भिक्खुवग्गो	११४
२६—ब्राह्मणवग्गो	१२१

●

गाथा-सूची

अ

अकक्कसं २६,२६
अकतं दुक्कतं २२,९
अक्कोच्छि मं ३,३-४
अक्कोधनं वतवन्तं २६,१८
अक्कोधेन जिने १७,३
अचरित्वा ब्रह्मचरियं ११,१०-११
अक्कोसं वधबन्धं २६,१७
अचिरं वतयं ३,९
अञ्ञा हि लाभुपनिसा ५,१६
अट्ठीनं नगरं ११,५
अत्तदत्थं १२,१०
अत्तना चोद– २५,२०
अत्तनाव कतं १२,५
अत्तनाव कतं पाप १२,९
अत्तानञ्चे तथा १२,३
अत्तानञ्चे पियं १२,१
अत्तानमेव पठमं १२,२
अत्ता हवे जितं ८,५
अत्ता हि अत्तनो २५,२१
अत्ता हि अत्तनो १२,४
अत्थम्हि जातम्हि २३,१२
अथ पापानि १०,८
अथवस्स अगारानि १०,१२
अनवट्ठित चित्तस्स ३,६
अनवस्सुतचित्तस्स ३,७
अनिक्कसावो कासावं १,९
अनुपुब्बेन मेधावी १८,५
अनुपवादो अनुपघातो १४,७
अनेकजाति संसारं ११,८
अन्धभूतो अयं १३,८
अपि दिब्बे १४,९
अपुञ्ञलाभो च २२,५
अप्पका ते ६,१०
अप्पमत्तो अयं ४,१३
अप्पमत्तो पमत्तेसु २,९
अप्पमादरता होथ २३,८
अप्पमादरतो भिक्खू २,११-१२
अप्पमादेन मघवा २,२०
अप्पमादो अमतपदं २,१
अप्पम्पि चे सहितं १ २०
अप्पलाभोपि चे २५,७
अप्पस्सुता ११,७
अभये च भय– २२,१२
अभित्थरेथ ९,१
अभिवादनसीलिस्स ८,१०
अभूतवादी निरयं २२,१
अयसा व मलं १८,६

अयोगे युञ्ज– १६,१
अलङ्कतो चेपि १०,१४
अलज्जिता ये २२,११
अवज्जे वज्जा– २२, ३
अविरुद्धं विरुद्धेसु २६,२४
असज्झायमला १८,७
असतं भावन ५,१४
असंसट्ठं २६,२२
असारे सारमतिनो १,११
असाहसेन धम्मेन १९,२
असुभानुपस्सि १,८
अस्सद्धो अकतञ्ञू ७,८
अस्सो यथा भद्रो १०,१६
अहं नागो व २३,१
अहिंसका ये १७,५

आ

आकासे च पदं १८,२०-२१
आरोग्यपरमा १५,८
आसा यस्स २६,२८

इ

इदं पुरे २३,७
इधतप्पति १,१७
इधनन्दति १,१८
इधमोदति १,१६
इध वस्सं २०,१४
इध सोचति १,१५

उ

उच्छिन्द सिनेह २०,१
उट्ठानकालम्हि २०,
उट्ठानवतो सतिमतो २,४
उट्ठानेन २,
उत्तिट्ठे १३,
उदकं हि ६,९-१
उपनीतवयो १८,
उय्युञ्जन्ति ७,
उसभं पवरं २६,४

ए

एकधम्मं १३,१
एकस्स चरितं २३,१
एकासनं एकसेय्यं २१,१
एतं खो सरणं १४,१
एतं दल्हं २४,१
एतमत्थवसं २०,१
एतं विसेसतो २,
एतं हि तुम्हे २०,
एथ पस्सथिमं १३,
एवम्भो पुरिस १८,१
एवं संकारभूते– ४,१
एसोव मग्गो २०,

ओ

ओवदेय्य ६,

क

कण्हं धम्मं ६,१

कयिरञ्चे २२,८
कामतो जायते १६,७
कायप्पकोपं १७,११
कायेन संवरो २५,२
कायेन संवुता १७,१४
कासावकण्ठा २२,२
किच्छो मनुस्स– १४,४
किं ते जटाहि २६,१२
कुम्भूपमं ३,८
कुसो यथा २२,६
को इमं पठविं ४,१
कोधं जहे १७,१

ख

खन्ती परमं तपो १४,६

ग

गतद्धिनो ७,१
गब्भमेके ९,११
गम्भीरञ्च २६,२१
गहकारक ११,९
गामे वा यदि ७,९

च

चक्खुना २५,१
चत्तारि ठानानि २२,४
चन्दनं तगरं ४,१२
चन्द'व विमल– २६,३१
चरञ्चे नाधि– ५,२
चरन्ति बाला ५,७
चिरप्पवासिं १६,११
चुतिं यो वेदि २६,३७

छ

छन्दजातो १६,१०
छिन्द सोतं २६,१
छेत्वा नन्दि २२,१६

ज

जयं वेरं पसवति १५,५
जिघच्छा परमा १५,७
जीरन्ति वे राज– ११,६

झ

झाय भिक्खु २५,१२
झायि विरज २६,४

त

तञ्च कम्मं ५,९
तण्हाय जायते १६,८
ततो मला १८,९
तत्राभिरति ६,१३
तत्रायमादि २५,१६
तथेव कत– १६,१२
तं पुत्त-पसु– २०,१५
तं वो वदामि २४,४
तसिणाय पुरक्खता २४,९-१०
तस्मा पियं १६,३
तस्मा हि धीरं १५,१२
तिणदोसानि २४,२३-२६
तुम्हेहि किच्चं २०,४

ते झायिनो २,३
ते तादिसे १४,१८
तेसं सम्पन्न– ४,१४

द

ददन्ति वे १८,१५
दन्तं नयन्ति २३,२
दिवा तपपि २६,५
दिसो दिसं ३,१०
दीघा जागरतो ५,१
दुक्खं १४,१३
दुन्निग्गहस्स ३.३
दुप्पब्बज्जं २१,१३
दुल्लभो १४,१५
दूरंगमं ३,५
दूरे सन्तो २१,१५

ध

धनपालको २३,५
धम्मं चरे १३,२
धम्मपीती ६,४
धम्मारामो २५,५

न

न अत्तहेतु ६,९
न अन्तलिक्खे ९,१२-१३
न कहापण– १४,८
नगरं यथा २२,१०
न चाहं १६,१४
न चाहु १७,८
न जटाहि २६,११
न तं कम्मं ५,८
न तं दल्हं २४,१२
न तं माता ३,११
न तावता १९,४
न तेन अरियो १९,१५
न तेन थेरो १९,५
न तेन पण्डितो १९,३
न तेन भिक्खू १९,११
न तेन होति १९,१
नत्थि झानं २५,१३
नत्थि राग– १५,६
नत्थि राग १८,१७
न नग्ग– १०,१३
न परेसं ४,७
न पुप्फगन्धो ४,११
न ब्राह्मणस्स– २६,७
न ब्राह्मणस्से २६,८
न भजे ६,३
न मुण्डकेन १९,९
न मोनेन १९,१३
न वाक्करण– १९,७
न वे कदरिया १३,११
न सन्ति पुत्ता २०,१६
न सीलब्बत– १९,१६
न हि एतेहि २३,४
न हि पापं ५,१२

न हि वेरेन १,५
निट्ठं गतो २४,१८
निधाय दण्डं २६,२३
निधीनं व ६,१
नेक्खं १७,१०
नेत खो सरणं १४,११
नेव देवो ८,६
नो चे लभेथ २३,१०

प

पञ्च छिन्दे २५,११
पटिसन्थार- २५,१७
पठवीसमो ७,६
पण्डुपलासो १८,१
पथव्या एकरज्जेन १३,१२
पमादमनु- २,६
पमादमप्पमादेन २,८
परदुक्खूपदानेन २१,२
परवज्जानुपस्सि- १८,१९
परिजिण्णमिदं ११,३
परे च न १,६
पविवेकरसं १५,९
पंसुकूलधरं २६,१०
पस्सचित्त कतं ११,२
पाणिम्हि चे ९,९
पापञ्च पुरिसो ९,२
पापानि परि- १९,१४
पापोपि पस्सति ९,४
पामोज्ज बहुलो २५,२२
पियतो जायते १६,४
पुञ्ञञ्चे पुरिसो ९,३
पुत्ता मत्थि ५,३
पुब्बे निवासं २६,४१
पूजारहे १४,१७
पेमतो जायते १६,५
पोराणमेतं १७,७

फ

फन्दनं चपलं ३,१
फुसामि नेक्खम्म १९,१७
फेणूपमं ४,३

ब

बहुम्पि चे १,१९
बहुं वे सरण १४,१०
बाल संगतचारी १५,११
बाहित पापो २६,६

भ

भद्रोपि ९,५

म

मग्गानट्ठङ्गिको २०,१
मत्तासुखपरिच्चागा २१,१
मधुवा मञ्ञति ५,१०
मनुजस्स पमत्त- २४,१
मनोप्पकोपं १७,१३
मनो पुब्बङ्गमा १,१२
ममेव कत- ५,१५

मलित्थिया १८,८
मातरं पितरं २१,५-६
मा पमाद– २,७
मा पियेहि १६,२
मावमञ्ञेथ पाप– ९,६
मावमञ्ञेथ पु– ९,७
मावोच फरुसं १०,५
मासे मासे कुसग्गेन ५,११
मासे मासे सहस्सेन ८,७
मिद्धी यदा २३,६
मुञ्च पुरे २४,१५
मुहुत्तमपि ५,६
मेत्ताविहारी २५,९

य

यं ऐसा सहती २४,२
यं किञ्चि यिट्ठं ८,९
यं किञ्चि सिथिलं २२,७
यञ्चे विञ्ञू १७,९
यतो यतो २५,१५
यथागारं दुच्छन्नं १,१३
यथागारं सुच्छन्नं १,१४
यथा दण्डेन १०,७
यथापि पुप्फं ८,१०
यथापि भमरो ४,६
यथापि मूले २४,५
यथापि रहदो ६,७
यथापि रुचिरं ४,८-९
यथा बुब्बुलकं १३,४
यथा संकार ४,१५
यथा द्वयेसु २६,२
यम्हा धम्मं २६,१०
यं हि किच्चं २१,३
यम्हि सच्चं च १९,६
यस्स अच्चन्त १२,६
यस्स कायेन २६,९
यस्स गति २६,३८
यस्स चेतं समुच्छिन्नं १९,८
यस्स चेत समुच्छिन्नं १८.१६
यस्स छत्तिसती २४,६
यस्स जालिनी १४,२
यस्स जितं १४,१
यस्स पापं १३,७
यस्स पारं अपारं २६,३
यस्स पुरे च २६,३९
यस्स रागो च २६,२५
यस्सालया न २६,२९
यस्सासवा ७,४
यस्सिन्द्रियाणि ७.५
यानिमानि ११,४
यावजीवम्पि ५,५
यावदेव अनत्थाय ५,१३
यावं हि वनथो २०,१२
ये च खो ६,११
ये झानपसुता १४,३

ये रागरत्ता २४,१४
येसं च सुसमा– २१,४
येसं सन्निचयो ७,३
येसं सम्बोधि ६,१४
यो अप्पदुट्ठस्स ९,१०
योइमं पलिपथं २६,३२
योगा वे जायती २०,१०
यो च गाथा- ८,३
यो च पुब्बे १३,६
यो च बुद्धञ्च १४,१२
यो च वन्तकसाव– १,१०
यो च वस्ससतं ८,८
यो च समेति १९,१०
यो चेतं सहती २४,३
यो दण्डेन १०,९
यो दुक्खस्स २६,२०
योध कामे २६,३३
योध तण्हं २६,३४
योध दीघं २६,२७
योध पुञ्ञं २६,३०
योध पुञ्ञं १९.१२
यो निब्बनथो २४,११
यो पाणमतिपातेति १८,१२
यो बालो ५,४
यो मुख– २५,४
यो वे उप्पतितं १७,२
यो सहस्स– ८,४
यो सासनं १२,८
यो हवे दहरो २५,२३

र

रतिया जायते १६,६
रमणीयानि अरञ्ञानि ७,१०
राजतो वा १०,११

व

वची पकोपं १७,१२
वज्जञ्च वज्जतो २२,१४
वनं छिन्दथ २०,११
वरं अस्सतरा २३,३
वस्सिका विय २५,१८
वाचानुरक्खो २०.९
वाणिजो’व ९,८
वारिजो’व ३,२
वितक्क पमथितस्स २४,१६
वितक्कूपसमे च २४,१७
वीततण्हो अनादानो २४,१९
वेदनं फरुसं १०,१०

स

सचे नेरेसि १०,६
सचे लभेथ २३,९
सच्चं भणे १७,४
सदा जागरमानानं १७,६
सद्धो सीलेन २१,१४
सन्तकायो २५,१९
सन्तं तस्स ७,७

सब्बत्थ वे ६,८
सब्बदानं २४,२१
सब्बपापस्स १४,५
सब्बसंयोजनं २६,१५
सब्बसो नाम– २५,८
सब्बाभिभू २४,२०
सब्बे तसन्ति १०,१-२
सब्बे धम्मा २०,७
सब्बे सङ्खारा अनिच्चा २०,५
सब्बे सङ्खारा दुक्खा २०,६
सरितानि २४,८
सलाभं २५,६
सवन्ति सब्ब- २४;७
सहस्सम्पि चे गाथा ८,२
सहस्सम्पि चे गाथा ८,१
साधु दस्सन– १५,१०
सारञ्च १,१२
सिञ्च भिक्खु २५,१०
सीलदस्सन– १६,९
सुकरानि १२,७
सुखकामानि १०,३-४
सुखं याव २३,१४
सुखा मत्तेय्यता २३,१३
सुखो बुद्धानं १४,१६
सुजीवं १८,१०
सुञ्ञागारं २५,१४
सुदस्सं वज्जं १८,१८
सुदुद्दसं ३,४
सुप्पबुद्धं २१, ७-१२
सुभानुपस्सिं १,७
सुरामेरयपानं १८,१३
सुसुखं वत १५,१–४
सेखो पथविं ४,२
सेय्यो अयो– २२,३
सेलो यथा ६,६
सो करोहि १८, २-४

ह

हत्थसञ्ञतो २५, ३
हनन्ति भोगा २४,२२
हंसादिच्च– १३,९
हित्वा मानुसकं २६,३५
हित्वा रतिं २६,३६
हिरीनिसेधो १०,१५
हिरीमता च १८,११
हीनं धम्मं १३,१

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धम्मपद

१. यमकवग्गो

स्थान--श्रावस्ती (जेतवन)   व्यक्ति--चक्खुपाल (थेर)

१. मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्क'व वहतो पदं।।१।।

(मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमया।
मनसा चेत्प्रदुष्टेन भाषते वा करोति वा।
तत एनं दुःखमन्वेति चक्रमिव वहतः पदम् ।। १ ।।)

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उनका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई दूषित मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार चक्का गाड़ी खींचनेवाले बैलों के पैर का।

श्रावस्ती (नगर)   मट्ठकुण्डली (ब्राह्मण-पुत्र)

99 २. मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी।। २ ।।

(मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमया।
मनसा चेत् प्रसन्नेन भाषते वा करोति वा।
तत एवं सुखमन्वेति छायेवानपायिनी ।। २ ।।)

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उनका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई प्रसन्न (=स्वच्छ) मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो सुख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार कि कभी साथ नहीं छोड़नेवाली छाया।

श्रावस्ती (जेतवन) थुल्लतिस्स (थेर)

३. अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥ ३ ॥
(अक्रोशीत् मां अवधीत् मां अजैषीत् मां अहार्षीत् मे।
ये च तत् उपनह्यन्ति तेषां वैरं न शाम्यति ॥ ३ ॥)

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया—जो ऐसा मन में बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त नहीं होता।

४. अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥
(अक्रोशीत् मां अवधीत् मां अजैषीत् मां अहार्षीत् मे।
ये तत् नोपनह्यन्ति वैरं तेषूपशाम्यति ॥ ४ ॥)

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया—जो ऐसा मन में नहीं बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त हो जाता है।

श्रावस्ती (जेतवन) काली (यक्षिणी)

५. न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥
(नहि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण च शाम्यन्ति, एष धर्मः सनातनः ॥ ५ ॥)

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते, अ-वैर (=मैत्री) से ही शान्त होते हैं—यह सदा का नियम है।

श्रावस्ती (जेतवन) कौशाम्बी के भिक्षु

६. परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥ ६ ॥

(परे च न विजानन्ति वयमत्र यंस्यामः ।
ये च तत्र विजानन्ति ततः शाम्यन्ति मेधगाः ॥ ६ ॥)

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे, जो इसका ख्याल करते हैं, उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं ।

सेतव्य नगर   चूलकाल, महाकाल

७. सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं ।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं ।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं'व दुब्बलं ॥ ७ ॥
(शुभमनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु असंवृतम् ।
भोजनेऽमात्राज्ञं कुसीदं हीनवीर्यम् ।
तं वै प्रसहति मारो वातो वृक्षमिव दुर्बलम् ॥ ७ ॥)

शुभ (=रूप-सौंदर्य) को देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में असंयत, भोजन में मात्रा न जाननेवाले, आलसी और उद्योग-हीन पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को ।

८. असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं ।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं ।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं'व पब्बतं ॥ ८ ॥
(अशुभमनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंवृतम् ।
भोजने च मात्राज्ञं श्रद्धं आरब्धवीर्यम् ।
तं वै न प्रसहते मारो वातः शैलमिव पर्वतम् ॥ ८ ॥)

अशुभ (=रूप की कुरूपता) को देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान् और उद्योगी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगा सकता, जैसे वायु शिलामय पर्वत को ।

श्रावस्ती (जेतवन)   देवदत्त

९. अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥ ९ ॥

(अनिष्कषायः काषायं यो वस्त्रं परिधास्यति ।
अपेतो दमसत्याभ्यां न स काषायमर्हति ॥ ९ ॥)

जो बिना चित्तमलों को हटाये काषाय वस्त्र धारण करता है, वह संयम और सत्य से हीन काषाय वस्त्र का अधिकारी नहीं है ।

१०. यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥ १० ॥

(यश्च वान्तकषायः स्यात् शीलेषु सुसमाहित. ।
उपेतो दम-सत्याभ्यां स वै काषायमर्हति ॥ १० ॥)

जिसने चित्तलों का त्याग कर दिया है, शील पर प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है, वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है ।

राजगृह (वेणुवन)   संजय (परिव्राजक)

११. असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ॥ ११ ॥
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥ ११ ॥

(असारे सारमतयः सारे चासारदर्शिनः ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिथ्यासङ्कल्पगोचराः ॥ ११ ॥)

जो असार को सार और सार को असार समझते हैं, वे मिथ्या संकल्प में पड़े (व्यक्ति) सार को प्राप्त नहीं करते हैं ।

१२. सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो ।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥ १२ ॥

(सारं च सारतो ज्ञात्वा, असारं च असारतः ।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्यक्-सङ्कल्प-गोचराः ॥ १२ ॥)

जो असार को असार और सार को सार समझते हैं, वे सम्यक् संकल्प से युक्त (व्यक्ति) सार को प्राप्त करते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन)   नन्द (थेर)

१३. यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठि समतिविज्झति ।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥ १३ ॥

(यथागारं दुश्छन्नं वृष्टिः समतिविध्यति ।
एवं अभावितं चित्तं रागः समतिविध्यति ॥ १३ ॥)

जैसे ठीक से न छाये हुए घर में वृष्टि का जल घुस जाता है, वैसे ही ध्यान-भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है ।

१४ यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठि न समतिविज्झति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥ १४ ॥
(यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ॥ १४ ॥)

जैसे ठीक से छाये हुए घर में वृष्टि का जल नहीं घुसता है, वैसे ही ध्यान-भावना से अभ्यस्त चित्त में राग नहीं घुसता है ।

राजगृह (वेणुवन) चुन्द (सूकरिक)

१५. इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति ।
सो सोचति सो विहञ्ञति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥१५॥
2000 (इह शोचति प्रेत्य शोचति पापकारी उभयत्र शोचति ।
स शोचति स विहन्यते दृष्ट्वा कर्म क्लिष्टमात्मनः ॥ १५ ॥)

इस लोक में शोक करता है और परलोक में जाकर भी, पापी दोनों जगह शोक करता है । वह अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) धार्मिक (उपासक)

99 १६. इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति ।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥१६॥
03 (इह मोदते प्रेत्य मोदते कृतपुण्य उभयत्र मोदते ।
01 स मोदते स प्रमोदते दृष्ट्वा कर्मविशुद्धिमात्मनः ॥ १६ ॥)

इस लोक में मोद करता है और परलोक में जाकर भी, पुण्यात्मा दोनों जगह मोद करता है । वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मोद करता है, प्रमोद करता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) देवदत्त

१७. इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति ।
पापं मे कतन्ति तप्पति भिय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ॥१७॥
(इह तप्यति प्रेत्य तप्यति पापकारी उभयत्र तप्यति ।
पापं मे कृतमिति तप्यति, भूयस्तप्यति दुर्गतिं गतः ॥ १७ ॥)

इस लोक में सन्ताप करता है और परलोक में जाकर भी; पापी दोनों जगह सन्ताप करता है । 'मैंने पाप किया है' सोच सन्ताप करता है । दुर्गति को प्राप्त हो और भी अधिक सन्ताप करता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) सुमना देवी

१८. इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति ।
पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ॥ १८ ॥
(इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्य उभयत्र नन्दति ।
पुण्यं मे कृतमिति नन्दति, भयो नन्दति सुगतिं गतः ॥ १८ ॥)

इस लोक में आनन्द करता है परलोक में जाकर भी; पुण्यात्मा दोनों जगह आनन्द करता है । "मैंने पुण्य किया है" सोच आनन्द करता है । सुगति को प्राप्त हो और भी अधिक आनन्द करता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) दो मित्र

१९. बहुम्पि चे सहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
गोपो व गावो गणयं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥१९॥
(वह्वीमपि संहितां भाषमाणः,
न तत्करो भवति नरः प्रमत्तः ।
गोप इव गा गणयन् परेषां,
न भागवान् श्रामण्यस्य भवति ॥ १९ ॥)

चाहे कोई भले ही बहुत से ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु प्रमाद में पड़ यदि उसके अनुसार आचरण न करे, तो वह दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वाले की भांति, श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता ।

२०. अप्पम्पि चे सहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो ।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामञ्ञस्स होति ॥२०॥

(अल्पामपि संहितां भाषमाणो,
धर्मस्य भवत्यनुधर्मचारी ।
रागं च द्वेषं च प्रहाय मोहं,
सम्यक् प्रजानन् सुविमुक्तचित्तः ॥
अनुपादान इह वाऽमुत्र वा,
स भागवान् श्रामणस्य भवति ॥ २० ॥)

चाहे कोई भले ही थोड़े ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु धर्मानुकूल आचरण करता हो, राग, द्वेष और मोह को छोड़ सचेत और मुक्तचित्त वाला हो तथा इस लोक या परलोक में कहीं भी आसक्ति न रखता हो तो वह श्रामण्य का अधिकारी होता है ।

२. अप्पमादवग्गो

कौशाम्बी (घोषिताराम) श्यामावती (रानी)

२१. अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥ १ ॥

(अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादो मृत्योः पदम् ।
अप्रमत्ता न म्रियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृताः ॥ १ ॥)

प्रमाद न करना अमृत-पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे तुल्य ही हैं ।

२२. एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ २ ॥

(एवं विशेषतो ज्ञात्वाऽप्रमादे, पण्डिताः ।
अप्रमादे प्रमोदन्त आर्याणां गोचरे रताः ॥ २ ॥)

पण्डित लोग अप्रमाद के विषय में इसे अच्छी तरह जान, बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आचरण में रत हो, अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं ।

२३. ते झायिनो साततिका निच्चं दल्ह-परक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बानं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥ ३ ॥

(ते ध्यायिनः साततिका नित्यं दृढपराक्रमाः ।
स्पृशन्ति धीरा निर्वाणं योगक्षेमं अनुत्तरम् ॥ ३ ॥)

सतत ध्यान का अभ्यास करने वाले, नित्य दृढ़ पराक्रमी वीर पुरुष परम-पद योग-क्षेम निर्वाण का लाभ करते हैं ।

राजगृह (वेणुवन) कुम्भघोषक

२४. उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो ।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति ॥४॥

(उत्थानवतः स्मृतिमतः शुचिकर्मणो निशम्यकारिणः ।
संयतस्य च धर्मजीविनोऽप्रमत्तस्य यशोभिवर्द्धते ॥ ४ ॥)

जो उद्योगी, सचेत, शुचि कर्मवाला तथा सोचकर काम करनेवाला है, और संयत, धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता है ।

राजगृह (वेणुवन) चूलपन्थक (थेर)

२५. उट्ठानेनप्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च ।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥
(उत्थानेन'ऽप्रमादेन संयमेन दमेन च ।
द्वीपं कुर्यात् मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥)

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम (=इन्द्रिय दमन) द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनावे, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके ।

श्रावस्ती (जेतवन) बालनक्खत्त (होली)

२६. पमादमनुयुंजन्ति बाला दुम्मेधिनो जना ।
अप्पमादंच मेधावी धनं सेट्ठं'व रक्खत ॥ ४ ॥
(प्रमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुर्मेधसो जनाः ।
अप्रमादं च मेधावी धनं श्रेष्ठमिव रक्षति ॥ ६ ॥)

मूर्ख, अनाड़ी लोग प्रमाद में लगते हैं, बुद्धिमान् श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की रक्षा करता है ।

२६. मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥ ७ ॥
(मा प्रमादमनुयुञ्जीत मा कामरतिसंस्तवम् ।
अप्रमत्तो हि ध्यायन् प्राप्नोति विपुलं सुखम् ॥ ७ ॥)

मत प्रमाद में फँसो, मत काम-रति में लिप्त हो । प्रमादरहित पुरुष ध्यान करते महान् सुख को प्राप्त होता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) महाकस्सप (थेर)

99 २८. पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो ।
पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं ।
पब्बतट्ठो'व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥ ८ ॥

(प्रमादमप्रमादेन यदा नुदति पण्डितः ।
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोकः शोकिनीं प्रजाम् ।
पर्वतस्थ इव भूमिस्थान् धीरो बालान् अवेक्षते ॥ ८ ॥)

जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह शोक रहित हो, शोकाकुल प्रजा को, प्रज्ञा रूपी प्रासाद पर चढकर जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही धीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

श्रावस्ती (जेतवन) दो मित्र भिक्षु

२९. अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो ।
अबलस्सं'व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो ॥ ९ ॥

(अप्रमत्तः प्रमत्तेषु सुप्तेषु बहुजागरः ।
अबलाश्वमिव शीघ्राश्वो हित्वा याति सुमेधाः ॥ ९ ॥)

प्रमादी लोगों में अप्रमादी, तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान् उसी प्रकार आगे जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।

वैशाली (कूटागारशाला) महाली (लिच्छवि)

३०. अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥ १० ॥

(अप्रमादेन मघवा देवानां श्रेष्ठतां गतः ।
अप्रमादं प्रशंसन्ति प्रमादो गर्हितः सदा ॥ १० ॥)

अप्रमाद (=आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। सभी अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदा निन्दा होती है।

श्रावस्ती (जेतवन) कोई भिक्षु

३१. अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
संयोजनं अणुं थूलं डहं अग्गी'व गच्छति ॥ ११ ॥

(अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा ।
संयोजनं अणुं स्थूलं दहन् अग्निरिव गच्छति ॥ ११ ॥)

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खाने वाला है, वह आग की भाँति छोटे-मोटे बन्धनों को जलाते हुए जाता है।

श्रावस्ती (जेतवन)　　　　तिस्स (थेर)

३२. अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय निब्बानस्सेव सन्तिके ॥ १२ ॥
(अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा।
अभव्यः परिहाणाय निर्वाणस्यैव अन्तिके ॥ १२ ॥)

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है, या प्रमाद से भय खानें वाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, वह तो निर्वाण के समीप पहुँचा हुआ है।

●

३. चित्तवग्गो

चालिय पर्वत — मेघिय (थेर)

३३. फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं ।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो'व तेजनं ॥ १ ॥
(स्पंदनं चपलं चित्तं दूरक्ष्यं दुर्निवार्यम् ।
ऋजुं करोति मेधावी इषुकार इव तेजनम् ॥ १ ॥)

चित्त क्षणिक है, चंचल है, इसे रोक रखना कठिन है और इसे निवारण करना (=रोकना) भी दुष्कर है । (ऐसे चित्त को) मेधावी पुरुष उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को ।

३४. वारिजो'व थले खित्तो ओकमोकत-उब्भतो ।
परिफन्दतिदं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥ २ ॥
(वारिजं इव स्थले क्षिप्तं उदकौकत उद्धृतम् ।
परिस्पन्दत इदं चित्तं मारधेयं प्रहातुम् ॥ २ ॥)

जैसे जलाशय से निकाल कर स्थल पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त के फन्दे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है ।

श्रावस्ती — कोई भिक्षु

३५. दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकाम-निपातिनो ।
99 चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥ ३ ॥
(दुर्निग्रहस्य लघुनो यत्र-काम-निपातिनः ।
चित्तस्य दमनं साधु, चित्तं दान्तं सुखावहम् ॥ ३ ॥)

जिसका निग्रह करना बड़ा कठिन है, जो बहुत हल्के स्वभाव का है, जो जहाँ चाहे वहाँ झट चला जाता है—ऐसे चित्त का दमन करना उत्तम है । दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है ।

श्रावस्ती कोई उदासीन भिक्षु

३६. सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकाम - निपातिनं।
चित्तं रक्खेय्य मेधावी चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥ ४ ॥
(सुदुर्दशं सुनिपुणं यत्र-कामनिपाति।
चित्तं रक्षेत् मेधावी, चित्तं गुप्तं सुखावहम् ॥ ४ ॥)

जिसे समझना आसान नहीं, जो अत्यन्त चालाक है, जो जहाँ चाहे झट चला जाता है—ऐसे चित्त की बुद्धिमान् पुरुष रक्षा करे। सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है।

श्रावस्ती संघरक्खित (थेर)

2000

३७. दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥ ५ ॥
(दूरङ्गमं एकचरं अशरीरं गुहाशयम्।
ये चित्तं संयस्यन्ति मुच्यन्ते मारबन्धनात् ॥ ५ ॥)

दूरगामी, अकेले विचरने वाले, निराकार, गुहाशयी इस चित्त का जो संयम करेंगे, वे मार के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे।

श्रावस्ती चित्तहत्थ (थेर)

३८. अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥ ६ ॥
(अनवस्थितचित्तस्य सद्धर्मम् अविजानतः।
परिप्लवप्रसादस्य प्रज्ञा न परिपूर्यते ॥ ६ ॥)

जिसका चित्त अ-स्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा चंचल है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती।

३९. अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो।
पुञ्ञपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७ ॥
(अनवस्रुतचित्तस्य अनन्वाहतचेतसः।
पुण्यपापप्रहीणस्य नास्ति जाग्रतो भयम् ॥ ७ ॥)

जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त द्वेष से रहित है, जो पाप-पुण्य विहीन है, उस जागृत पुरुष को भय नहीं।

श्रावस्ती पाँच सौ विपश्यक भिक्षु

४०. कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥ ८ ॥
(कुम्भोपमं कायमिमं विदित्वा,
नगरोपमं चित्तमिदं स्थापयित्वा।
युध्येत मारं प्रज्ञायुधेन जितं
च रक्षेत् अनिवेशनः स्यात् ॥ ८ ॥)

इस शरीर को घड़े के समान (अनित्य) जान. इस चित्त को नगर के समान (रक्षित और दृढ़) ठहरा, प्रज्ञा रूपी हथियार से मार से युद्ध करे। जीत लेने पर अपनी रक्षा करे आसक्ति रहित हो।

श्रावस्ती पूतिगत्त तिस्स (थेर)

४१, अचिरं वतयं कायो पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं'व कलिङ्गरं ॥ ९ ॥
(अचिरं बतायं कायः पृथ्वीं अधिशेष्यते।
क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थं इव कलिङ्गरम् ॥ ९ ॥)

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतन रहित हो निरर्थक काष्ठ की भाँति पृथ्वी पर पड़ रहेगा।

कोसल जनपद नन्द (गोप)

४२. दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे ॥१०॥
(द्विट् द्विषं यत् कुर्यात् वैरी वा पुनः वैरिणम्।
मिथ्याप्रणिहितं चित्तं पापीयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥ १० ॥)

जितनी हानि शत्रु शत्रु की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

श्रावस्ती सोरेय्य (थेर)

४३. न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका ।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो न ततो करे ॥११॥
(न तत् मातापितरौ कुर्यातां अन्ये चापि च ज्ञातिकाः ।
सम्यक्प्रणिहितं चित्तं श्रेयांसं एनं ततः कुर्यात् ॥ ११ ॥)

जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बन्धु नहीं कर सकते हैं, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है ।

◆

४. पुप्फवग्गो

श्रावस्ती पाँच सौ भिक्षु

४४. को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥१॥

(क इमां पृथिवीं विजेष्यते यमलोकं च इमं सदेवकम् ।
को धर्मपदं सुदेशितं कुशलः पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥ १ ॥)

इस पृथ्वी को तथा देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा कौन ? कौन कुशल पुरुष पुष्प की तरह भली प्रकार से उपदिष्ट धर्म-पदों को चुनेगा ?

४५. सेखो पठवि विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।
सेखो घम्मपदं सुदेसितं कुसलो फुप्फमिव पचेस्सति ॥२।

(शैक्षः पृथिवीं विजेष्यते यमलोकं च इमं सदेवकम् ।
शैक्षो धर्मपदं सुदेशितं कुशलः पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥ २ ॥)

शैक्ष्य इस पृथ्वी को तथा देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा। कुशल शैक्ष्य पुष्प की तरह धर्म-पदों को चुनेगा ।

श्रावस्ती मरीचि कम्मट्ठानिक (थेर)

४६. फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥३॥
99

(फेनोपमं कायमिमं विदित्वा
मरीचिधर्म्मं अभिसम्बुधानः ।
छित्वा मारस्य प्रपुष्पकाणि
अदर्शनं मृत्युराजस्य गच्छेत् ॥ ३ ॥

इस शरीर को फेन के समान तथा (मृग-) मरीचिका के समान (असार) जान, मार के फन्दे को तोड़कर यमराज की दृष्टि से परे हो जाय ।

श्रावस्ती　　　　विडूडभ

४७. पुप्फानि हेव पचिनन्तं ब्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ।।४।।
(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं ग्रामं महौघ इव मृत्युरादाय गच्छति ।।४।।)

(काम-भोग रूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी प्रकार पकड़ ले जाती है, जिस प्रकार सोये हुए ग्राम को बड़ी बाढ़ ।

श्रावस्ती　　　　पतिपूजिका

४८. पुप्फानि हेव पचिनन्तं ब्यासत्तमनसं नरं ।
अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं ।।५।।
(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।
अतृप्तं एव कामेषु अन्तकः कुरुते वशम् ।।५।।)

(काम-भोग रूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त पुरुष को काम-भोगों में अतृप्त हुए ही मृत्यु अपने वश में कर लेती है ।

श्रावस्ती　　　　(कंजूस) कोसिय सेठ

४९. यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ।।६।।
(यथापि भ्रमरः पुष्पं वर्णगन्धं अघ्नन् ।
पलायते रसमादाय एवं ग्रामे मुनिश्चरेत् ।।६।।)

जैसे भ्रमर पुष्प के वर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही मुनि ग्राम में भिक्षाटन करे ।

श्रावस्ती　　　　पाठिक (आजीवक साधु)

५०. न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।
अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ।।७।।
(न परेषां विलोमानि न परेषां कृताकृतम् ।
आत्मन एव अवेक्षेत कृतानि अकृतानि च ।।७।।)

न तो दूसरों के विरोधी (वचन) पर ध्यान दे, न दूसरों के कृत्याकृत्य को देखे, केवल अपने ही कृत्याकृत्य का अवलोकन करे।

श्रावस्ती छत्तपाणि (उपासक)

५१. यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥८॥
(यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवद् अगन्धकम्।
एवं सुभाषिता वाक् अफला भवति अकुर्वतः ॥८॥)

जैसे सुन्दर, वर्णयुक्त निर्गन्ध पुष्प होता है, वैसे ही (कथनानुसार) आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।

५२. यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो ॥९॥
(यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवत् सगन्धकम्।
एवं सुभाषिता वाक् सफला भवति कुर्वतः ॥९॥)

जैसे सुन्दर वर्णयुक्त सुगन्धित पुष्प होता है, वैसे ही (कथनानुसार) आचरण करने वाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) विशाखा (उपासिका)

५३. यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं ॥१०॥
(यथापि पुष्पराशेः कुर्यात् मालागुणान् बहून्।
एवं जातेन मर्त्येन कर्तव्यं कुशलं बहु ॥१०॥)

जैसे पुष्पराशि से बहुत-सी मालायें बनाये, ऐसे ही उत्पन्न हुए प्राणी को बहुत पुण्य करना चाहिए।

श्रावस्ती आनन्द (थेर)

५४. न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥११॥
(न पुष्पगन्धः प्रतिवातमेति
न चन्दनं तगरमल्लिके वा।

सतां च गन्धः प्रतिवातमेति
सर्वा दिशः सत्पुरुषः प्रवाति ॥११॥)

पुष्प, चन्दन, तगर या चमेली किसी की भी सुगन्ध उल्टी-हवा नहीं जाती, किन्तु सज्जनों की सुगन्ध उल्टी-हवा भी जाती है, सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है ।

५५. चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी ।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥१२॥

(चन्दनं तगरं वापि उत्पलं अथ वार्षिकी ।
एतेषां गन्धजातानां शीलगन्धोऽनुत्तरः ॥१२॥)

चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगन्धों से शील (=सदाचार) की सुगन्ध उत्तम है ।

राजगृह (वेणुवन) महाकस्सप (थेर)

५६. अप्पमत्तो अयं गन्धो या'यं तगरचन्दनी ।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥१३॥

(अल्पमात्रोऽयं गन्धो योऽयं तगरचन्दनी ।
यश्च शीलवतां गंधो वाति देवेषु उत्तमः ॥१३॥)

तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अल्पमात्र है, और जो यह शीलवानों की गन्ध है, वह उत्तम (गन्ध) देवताओं में फैलती है ।

राजगृह गोधिक (थेर)

५७. तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं ।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥१४॥

(तेषां सम्पन्नशीलानां अप्रमाद-विहारिणाम् ।
सम्यग्-ज्ञा-विमुक्तानां मारो मार्गं न विन्दति ॥१४॥)

जो वे शीलवान् निरालस हो विहरने वाले, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गये हैं, उनके मार्ग को मार नहीं पाता ।

श्रावस्ती (जेतवन) गरहदिन्न

५८. यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥१५॥

५९. एवं संकारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने ।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥१६॥

(यथा संस्कारधान उज्झिते महापथे ।
पद्म तत्र जायेत शुचिगन्धं मनोरमम् ॥१५॥)
(एवं संकारभूते अन्धभूते पृथग्जने ।
अतिरोचते प्रज्ञया सम्यक्-संबुद्ध-श्रावकः ॥१६॥

जैसे बड़ी सड़क के किनारे फेंके कूड़े के ढेर पर कोई सुगन्धित सुन्दर पद्म उत्पन्न होवे, ऐसे ही कूड़े के समान अन्धे पृथक्-जनों में सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभित होता है ।

●

५. बालवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) दरिद्र सेवक

६०. दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥१॥
(दीर्घा जाग्रतो रात्रिः दीर्घं श्रान्तस्य योजनम् ।
दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्मं अविजानताम् ॥१॥)

जागने वाले को रात लम्बी होती है । थके हुए के लिए योजन लम्बा होता है । सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार (–चक्र) लम्बा होता है ।

श्रावस्ती सार्द्धविहारी (=शिष्य

६१. चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एकचरियं दल्हं कयिरा,नत्थि बाले सहायता ॥२॥
(चरन् चेत् नाधिगच्छेत् श्रेयांसं सदृशं आत्मनः ।
एकचर्यां दृढं कुर्यात् नास्ति बाले सहायता ॥२॥)

विचरण करते यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पाये, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरे । मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं ।

श्रावस्ती आनन्द (सेठ)

६२. पुत्ता मत्थि घनम्मत्थि इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो घनं ॥३॥
(पुत्रा मे सन्ति धनं मेऽस्ति इति बालो विहन्यते ।
आत्मा हि आत्मनो नास्ति कुतः पुत्रः कुतो धनम् ॥३॥)

'मेरा पुत्र है' 'मेरा धन है'—इस प्रकार मूर्ख परेशान होता है, जब मनुष्य अपना आप नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कहाँ तक होंगे ?

श्रावस्ती (जेतवन) गिरहकट चोर

६३. यो बालो मञ्ञति बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो ।
बालो च पण्डितमानी स वे बालो'ति वुच्चति ॥४॥

(यो बालो मन्यते बाल्यं पण्डितश्चापि तेन स ।
बालश्च पण्डितमानी स, वै बाल इत्युच्यते ॥४॥)

जो मूर्ख अपनी मूर्खता को समझता है, इस कारण वह पण्डित है। जो मूर्ख हो अपने को पण्डित समझता है, वही यथार्थ में मूर्ख है।

श्रावस्ती (जेतवन) उदायी (थेर)

६४. यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति ।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ॥५॥
(यावज्जीवमपि चेद् बालः पंडितं पर्युपासते ।
न स धर्मं विजानाति दर्वी सूपरसं यथा ॥५॥)

यदि मूर्ख जीवन भर पण्डित के साथ रहे, तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता है, जैसे कि कछली दाल (=सूप) के रस को।

श्रावस्ती (जेतवन) भद्रवर्गीय (तीस भिक्षु)

६५. मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति ।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥
(मुहूर्तमपि चेद् विज्ञः पंडितं पर्युपासते ।
क्षिप्रं धर्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥)

यदि विज्ञ पुरुष एक मुहूर्त भी पण्डित की सेवा में रहे, तो वह शीघ्र ही धर्म को जान लेता है, जैसे कि जिह्वा दाल के रस को।

राजगृह (वेणुवन) सुप्पबुद्ध (कोढ़ी)

६६. चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना ।
करोन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं ॥७॥
(चरन्ति बाला दुर्मेधसोऽमित्रेणैवात्मना ।
कुर्वन्तः पापकं कर्म यद् भवति कटुकफलम् ॥७॥)

दुर्बुद्धि मूर्ख अपना शत्रु स्वयं होकर पाप-कर्म करते विचरण करते हैं, जिसका फल कड़आ होता है।

श्रावस्ती (जेतवन) एक कृषक

02 ६७. न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ॥८॥
(न तत् कर्म कृतं साधु यत् कृत्वाऽनुतप्यते ।
यस्याश्रुमुखो रुदन् विपाकं प्रतिसेवते ॥८॥)

वह काम करना ठीक नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े और जिसके फल को अश्रुमुख रोते हुए भोगना पड़े ।

राजगृह (वेणुवन) सुमन (माली)

६८. तञ्च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति ।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥९॥
03 (तच्च कर्म कृतं साधु यत् कृत्वा नानुतप्यते ।
यस्य प्रतीतः सुमना विपाकं प्रतिसेवते ॥९॥)

वही काम करना ठीक है, जिसे करके पछताना न पड़े और जिसके फल को प्रसन्न मन से भोग करे ।

श्रावस्ती (जेतवन) उप्पलवण्णा (थेरी)

६९. मधु वा मञ्ञती बालो याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चती पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति ॥१०॥
(मध्विव मन्यते बालो यावत् पापं न पच्यते ।
यदा च पच्यते पापं अथ दुःखं निगच्छति ॥१०॥)

जब तक पाप का विपाक नहीं मिलता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान (मीठा) समझता है, किन्तु जब उसका फल मिलता है, तब मूर्ख दुःख को प्राप्त होता है ।

राजगृह (वेणुवन) जम्बूक (आजीवक)

७०. मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं ।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोलसिं ॥११॥
(मासे मासे कुशाग्रेण बालो भुंजीत भोजनम् ।
न स संख्यातधर्माणां कलामर्हति षोडशीम् ॥११॥)

यदि मूर्ख महीने महीने पर कुश की नोंक से भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हो सकता।

राजगृह (वेणुवन)   अहिपेत

७१. न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीर'व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माच्छन्नो'व पावको ।।१२।।
(नहि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुंचति।
दहन् बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावकः ।।१२।।)

जैसे ताजा दूध शीघ्र ही जम नहीं जाता, ऐसे ही किया गया पाप-कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं लाता। राख से ढँकी आग की भाँति वह जलाता हुआ मूर्ख का पीछा करता है।

राजगृह (वेणुवन)   सट्ठिकूट (पेत)

७२. यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्सं विपातयं ।।१३।।
(यावदेव अनर्थाय ज्ञप्तं बालस्य जायते।
हन्ति बालस्य शुक्लांशं मूर्धानमस्य विपातयन् ।।१३।।)

मूर्ख का जितना भी ज्ञान होता है, वह उसके ही अनर्थ के लिए होता है। वह मूर्ख की अच्छाई का नाश करता है और उसकी प्रज्ञा (=सिर) को नीचे गिरा देता है।

श्रावस्ती (जेतवन)   सुधम्म (थेर)

७३. असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ।।१४।।
७४. ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो।
ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।
इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति ।।१५।।

(असद् भावनमिच्छेत् पुरस्कारं च भिक्षुषु।
आवासेषु चैश्वर्यं पूजा परकुलेषु च ।।१४।।)

(ममैव कृतं मन्येतां–गृहि-प्रव्रजितावुभौ।
ममैवातिवशाः स्यातां कृत्याकृत्येषु केषु चित्।
इति बालस्य संकल्प इच्छा मानश्च वर्द्धते ॥१५॥)

भिक्षुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया मानें, सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही अधीन रहें—ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है, जिससे उसकी इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

श्रावस्ती (जेतवन) (वनवासी) तिस्स (थेर)

७५. अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बानगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ॥१६॥

(अन्या हि लाभोपनिषद् अन्या निर्वाणगामिनी।
एवमेतद् अभिज्ञाय भिक्षुर्बुद्धस्य श्रावकः।
सत्कारं नाभिनन्देत् विवेकमनुबृंहयेत् ॥१६॥)

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनन्दन न करे, और विवेक (=एकान्तवास) को बढ़ावे।

●

६. पण्डितवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) राध (थेर)

७६. नीधीनं-'व पवत्तारं यं पस्से वज्जदस्सिनं ।
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे ।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥१॥

(निधीनामिव प्रवक्तारं यं पश्येत् वर्ज्यदर्शिनम् ।
निगृह्यवादिनं, मेधाविनं तादृशं पंडितं भजेत् ।
तादृशं भजमानस्य श्रेयो भवति न पापीयः ॥१॥)

निधियों को बतलाने वाले की भाँति दोष दिखाने वाले वैसे संयमवादी, मेधावी पण्डित का साथ करे, क्योंकि वैसे का साथ करने से कल्याण ही होता है, बुरा नहीं ।

श्रावस्ती (जेतवन) अस्सजी, पुनब्बसु

७७. ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये ।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥२॥

(अववदेदनुशिष्याद् असभ्याच्च निवारयेत् ।
सतां हि स प्रियो भवति असतां भवत्यप्रियः ॥२॥)

जो उपदेश दे, सुमार्ग दिखाये तथा कुमार्ग से निवारण करे, वह सज्जनों को प्रिय होता है, किन्तु दुर्जनों को अप्रिय ।

श्रावस्ती (जेतवन) छन्न (थेर)

७८. न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।
02 भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥३॥

(न भजेत् पापानि मित्राणि न भजेत् पुरुषाधमान् ।
भजेत् मित्राणि कल्याणानि भजेत् पुरुषानुत्तमान् ॥३॥)

बुरे मित्रों का साथ न करे, न अधम-पुरुषों का सेवन करे । अच्छे मित्रों का साथ करे, उत्तम पुरुष का सेवन करें ।

श्रावस्ती (जेतवन) महाकप्पिन (थेर)

७९. धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पंडितो ।।४।।
(धर्मपीतीः सुखं शेते विप्रसन्नेन चेतसा ।
आर्यप्रवेदिते धर्मे सदा रमते पंडितः ।।४।।)

धर्म-रस का पान करने वाला प्रसन्न चित्त से सुखपूर्वक सोता है, पण्डित बुद्ध के उपदिष्ट धर्म में सदा रमण करता है ।

श्रावस्ती (जेतवन) पण्डित सामणेर

८०. उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति पंडिता ।।५।।
(उदकं हि नयन्ति नेतृका इषुकारा नमयन्ति तेजनम् ।
दारु नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ।।५।।)

नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और पण्डितजन अपना दमन करते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन) लकुण्टक भद्दिय (थेर)

८१. सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पंडिता ।।६।।
(शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।
एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ।।६।।)

जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते ।

श्रावस्ती (जेतवन) काण-माता

८२. यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ।।७।।
(यथापि ह्रदो गम्भीरो विप्रसन्नोऽनाविलः ।
एवं धर्मान् श्रुत्वा विप्रसीदन्ति पण्डिताः ।।७।।)

जैसे गहरा जलाशय स्वच्छ और निर्मल (जल वाला) होता है, वैसे ही धर्म को सुनकर पण्डित लोग शुद्ध हो जाते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन) पाँस सौ भिक्षु

८३. सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन न उच्चावचं पंडिता दस्सयन्ति ।।८।।

(सर्वत्र वै सत्पुरुषा व्रजन्ति न कामकामा लपन्ति सन्तः ।
सुखेन स्पृष्टा अथवा दुःखेन नोच्चावचं पण्डिता दर्शयन्ति ।।८।।)

सत्पुरुष सभी (छन्द-राग आदि) को त्याग देते हैं, वे कामभोगों के लिए बात नहीं चलाते । सुख मिले या दुःख, पण्डितजन विकार नहीं प्रदर्शन करते ।

श्रावस्ती (जेतवन) धम्मिक (थेर)

८४. न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं ।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ।।९।।

(नात्महेतोः न परस्य हेतोः
न पुत्रमिच्छेत् न धनं न राष्ट्रम् ।
नेच्छेद् अधर्मेण समृद्धिमात्मनः
स शीलवान् प्रज्ञावान् धार्मिकः स्यात् ।।९।।)

जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहता और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वही शीलवान्, प्रज्ञावान् और धार्मिक है।

श्रावस्ती (जेतवन) धर्मश्रवण

८५. अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ।।१०।।

(अल्पकास्ते मनुष्येषु ये जनाः पारगामिनः ।
अथेमा इतराः प्रजाः तीरमेवानुधावति ।।१०।।)

मनुष्यों में पार जाने वाले थोड़े ही हैं, यह दूसरे लोग तो किनारे ही किनारे दौड़ने वाले हैं।

८६. येच खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो ।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ।।११।।
(ये च खलु सम्यगाख्याते धर्मे धर्मानुवर्तिनः ।
ते जनाः पारमेष्यन्ति मृत्युधेयं सुदुस्तरम् ।।११।।)

जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं, वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार करेंगे ।

श्रावस्ती (जेतवन)　　पाँच सौ नवागत भिक्षु

८७. कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पंडितो ।
ओका अनोकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ।।१२।।
८८. तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो ।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पंडितो ।।१३।।
(कृष्णं धर्मं विप्रहाय शुक्लं भावयेत् पण्डितः ।
ओकात् अनोकं आगम्य विवेके यत्र दूरमम् ।।१२।।)
(तत्राभिरतिमिच्छेत् हित्वा कामान् अकिंचनः ।।
पर्यवदापयेत् आत्मानं चित्तक्लेशैः पण्डितः ।।१३।।)

पण्डित बुरी बात को छोड़ अच्छी का अभ्यास करे । घर से बेघर हो एकान्त स्थान में रहे । भोगों को छोड़ अकिंचन हो वहीं रत रहने की इच्छा करे । पण्डित चित्त के मलों से अपने को शुद्ध करे ।

८९. येसं सम्बोधि-अङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं ।
आदान-पटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता ।
खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ।।१४।।
(येषां संबोध्यंगेषु सम्यक् चित्तं सुभावितम् ।
आदानप्रतिनिसर्गे अनुपादाय ये रताः ।
क्षीणास्रवा ज्योतिष्मन्तस्ते लोके परिनिर्वृताः ।।१४।।)

जिनका चित्त सम्बोध्यंगों में अच्छी तरह अभ्यस्त हो गया है, जो अनासक्त हो परिग्रह के त्याग में रत, क्षीणाश्रव और द्युतिमान् हैं, वे लोक में निर्वाण पा चुके हैं ।

● ●

७. अरहन्तवग्गो

राजगृह (जीवकका आम्रवन)   जीवक

९० गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीनस्स परिलाहो न विज्जति ॥१॥
(गताध्वनो विशोकस्य विप्रमुक्तस्य सर्वथा ।
सर्वग्रन्थप्रहीणस्य परिदाहो न विद्यते ॥१॥)

जिसने संसार मार्ग तय कर लिया है, जो शोक-रहित तथा सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ प्रहीण हो गई हैं, उसे कोई कष्ट नहीं ।

राजगृह (वेणुवन)   कहाकस्सप (थेर)

९१. उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा'व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥
(उद्युंजते स्मृतिमन्तो न निकेते रमन्ते ते ।
हंसा इव पल्वलं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥२॥)

स्मृतिमान् (ध्यान-विपश्यना आदि में) लगे रहते हैं, वे आलय में रत नहीं होते । वे तो सरोवर को छोड़ चले जानेवाले हंस की भाँति आलय को त्याग देते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन)   वेलट्ठि सीस (थेर)

९२. येसं सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥३॥
(येषां सन्निचयो नास्ति ये परिज्ञातभोजनाः ।
शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।
आकाश इव शकुन्तानां गतिः तेषां दुरन्वया ॥३॥)

जिन्हें कोई संग्रह नहीं, जो भोजन में संयत हैं, शून्य और अनिमित्त विमोक्ष (=निर्वाण) जिनका गोचर (=विचरण-स्थान) है, उनकी गति आकाश में पक्षियों की गति की भांति अज्ञेय है ।

राजगृह (वेणुवन) अनुरुद्ध (थेर)

९३. यस्सा'सवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥४॥

(यस्यास्रवाः परिक्षीणा आहारे च अनिःसृतः ।
शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।
आकाश इव शकुन्तानां पदं तस्य दुरन्वयम् ॥४॥)

जिसके आश्रव (=चित्त-मल) क्षीण हो गये हैं, जो आहार में आसक्त नहीं, तथा शून्य और अनिमित्त विमोक्ष जिसका गोचर है, उसकी गति आकाश में पक्षियों की गति की भाँति अज्ञेय है ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) महाकच्चायन (थेर)

९४. यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥५॥

(यस्येन्द्रियाणि शमतां गतानि
अश्वा यथा सारथिना सुदान्ताः ।
प्रहीणमानस्य अनास्रवस्य
देवा अपि तस्य स्पृहयन्ति तादृशः ॥५॥)

सारथी द्वारा दमन किये गये अश्व के समान जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं, वैसे अहंकार रहित अनाश्रव सन्त (=अर्हत्) की देवता भी स्पृहा (=चाह) करते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन) सारिपुत्त (थेर)

९५. पठवीसमो नो विरुज्झति इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो ।
रहदो'व अपेतकद्दमो संसारा न भवन्ति तादिनो ॥६॥

(पृथिवीसमो न विरुध्यते इन्द्रकीलोपमस्तादृक् सुव्रतः ।
ह्रद इवापेतकर्दमः संसारा न भवन्ति तादृशः ॥६॥)

सुन्दर व्रतधारी अर्हत् (= तादि) पृथ्वी के समान क्षुब्ध नहीं होने वाला और इन्द्रकील के समान अकम्प्य होता है । वैसे पुरुष को कीचड़-रहित जलाशय की भाँति मल (=संसार) नहीं होते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन) कोशाम्बीवासी तिस्स थेर का श्रामणेर

९६. सन्तं तस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ।।७।।

(शान्तं यस्य मनो भवति शान्ता वाक् च कर्म च ।
सम्यगाज्ञाविमुक्तस्य उपशान्तस्य तादृशः ।।७।।)

यथार्थ रूप से जानकर मुक्त हुए उपशान्त अर्हत् का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शांत होते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन) सारिपुत्त (थेर)

९७. अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ।।८।।

(अश्रद्धोऽकृतज्ञश्च सन्धिच्छेदश्च यो नरः ।
हतावकाशी वान्ताशः स वै उत्तम पुरुषः ।।८।।)

जो (अन्ध-) श्रद्धा से रहित है, अकृत (=निर्वाण) को जानने वाला है, (संसार की) सन्धि का छेदन करने वाला है और उत्पत्ति रहित है, तथा जिसने सारी तृष्णा को वमन (=त्याग) कर दिया है, वही उत्तम पुरुष है ।

श्रावस्ती (जेतवन) खदिरवनिय रेवत (थेर)

९८. गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले ।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमि रामणेय्यकं ।।९।।

(ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले ।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमी रमणीया ।।९।।)

गाँव में जल या जंगल में, नीचे या ऊँचे, जहाँ कहीं अर्हत् विहार करते हैं वह भूमि रमणीय है ।

श्रावस्ती (जेतवन) कोई स्त्री

९९- रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो ।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ।।१०।।

(रमणीयान्यारण्यानि यत्र न रमते जनः ।
वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेषिणः ।।१०।।)

वह रमणीय वन, जहाँ साधारण लोग रमण नहीं करते, वहाँ काम (-भोगों) को न खोजने वाले वीतराग रमण करेंगे ।

● ●

८. सहस्सवग्गो

राजगृह (वेणुवन) तम्बदाठिक (चोरघातक)

१००. सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ १ ॥
(सहस्रमपि चेद् वाचः अनर्थपदसंहिताः।
एकमर्थपदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥१॥)

व्यर्थ के पदों से युक्त हजार वचनों से भी, सार्थक एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है।

जेतवन दारुचीरिय (थेर)

१०१. सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ २ ॥
(सहस्रमपि चेद् गाथा अनर्थपदसंहिताः।
एकं गाथापदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥२॥)

अनर्थ पदों से युक्त हजार गाथाओं से भी एक गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है।

जेतवन कुंडलकेसी (थेरी)

१०२. यो च गाथासतं भासे अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥
(यश्च गाथाशतं भाषेतानर्थपदसंहितम्।
एकं धर्मपदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥३॥)

जो अनर्थपदों से युक्त सौ गाथायें भी कहे, उससे धर्म का एक पद भी श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है।

१०३. यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ४ ॥

(यः सहस्रं सहस्रेण संग्रामे मानुषान् जयेत् ।
एकं च जयेद् आत्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ॥४॥)

जो संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीत ले, उससे उत्तम संग्राम-विजयी वही है जो एक अपने स्वयं को जीत ले ।

जेतवन अनर्थ-पुच्छक ब्राह्मण

१०४. अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा ।
अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्ञतचारिनो ॥ ५ ॥
(आत्मा ह वै जितः श्रेयान् या चेयमितराः प्रजाः ।
दान्तात्मनः पुरुषस्य नित्यं संयतचारिणः ॥५॥)
१०५ नेव देवो न गन्धब्बो न मारो सह ब्रह्मुना ।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥ ६ ॥
(नैव देवो न गन्धर्वो न मारः सह ब्रह्मणा ।
जितं अपजितं कुर्यात् तथारूपस्य जन्तोः ॥६॥)

इन अन्य प्रजाओं को जीतने की अपेक्षा अपने को जीतना श्रेष्ठ है । अपने को दमन करनेवाला; और नित्य अपना संयम करनेवाला जो पुरुष है, उसके जीते को न देवता, न गन्धर्वन, न ब्रह्मा सहित मार, वे-जीता कर सकते हैं ।

वेणुवन सारिपुत्त के मामा

१०६. मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं ।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ७ ॥
(मासे मासे सहस्रेण यो यजेत शतं समान् ।
एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।
सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥७॥)

जो महीने-महीने सौ वर्ष तक हजार (मुद्रा) से यजन करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को मुहूर्तभर भी पूजे, तो सौ वर्ष के हवन से वह पूजा ही श्रेष्ठ है ।

वेणुवन सारिपुत्त का भांजा

१०७. यो च वस्ससतं जन्तु अग्गि परिचरे वने ।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ।। ८ ।।

(यश्च वर्षशतं जन्तुरग्नि परिचरेद् वने ।
एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।
सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ।।८।।)

जो प्राणी सौ वर्ष तक वन में अग्निहोत्र करे, और परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को मुहूर्तभर भी पूजे, तो सौ वर्ष के हवन से वह पूजा ही श्रेष्ठ है ।

वेणुवन सारिपुत्त का मित्र ब्राह्मण

१०८. यं किञ्चि यिट्ठं च हुतं च लोके
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो ।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ।। ९ ।।

(यत् किंचिद् इष्टं च हुतं च लोके,
संवत्सरं यजेत पुण्यापेक्षः ।
सर्वमपि तत् न चतुर्भागमेति,
अभिवादना ऋजुगतेषु श्रेयसी ।।९।।)

यदि पुण्य को चाहनेवाला वर्षभर लोक में यज्ञ या हवन करे तो भी वह सब ऋजुभूत (व्यक्तियों) को किये गये अभिवादन के चौथाई फल के बराबर भी नहीं होता, प्रत्युत अभिवादन ही श्रेष्ठ है ।

दीर्घलम्बक (नगर) दीर्घायु कुमार

१०९. अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ।। १० ।।

(अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपचायिनः ।
चत्वारो धर्मा वर्धन्ते आयुर्वर्णः सुखं बलम् ।।१०।।)

जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—(१) आयु; (२) वर्ण, (३) सुख और (४) बल ।

जेतवन　　संकिच्च सामणेर

११०. यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो ।। ११ ।।

(यश्च वर्षशतं जीवेद् दुःशीलोऽसमाहितः ।
एकाहं जीवितं श्रेयः शीलवतो ध्यायिनः ।।११।।)

दुःशील और एकाग्रतारहित के सौ वर्ष के जीने से शीलवान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन　　खाणु कोण्डञ्ञ (थेर)

१११. यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो ।। १२ ।।

(यश्च वर्षशतं जीवेद् दुष्प्रज्ञोऽसमाहितः ।
एकाहं जीवितं श्रेयः प्रज्ञावतो ध्यायिनः ।।१२।।)

दुष्प्रज्ञ और एकाग्रतारहित के सौ वर्ष के जीने से प्रज्ञावान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन　　सप्पदास [थेर]

११२. यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतो दल्हं ।। १३ ।।
(यश्च वर्षशतं जीवेत् कुसीदो हीनवीर्यः ।
एकाहं जीवितं श्रेयो वीर्यमारभतो दृढम् ।।१३।।)

आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़-उद्योगी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन　　पटाचारा (थेरी)

११३. यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयब्बयं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बयं ।। १४ ।।
(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् उदयव्ययम् ।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यत उदयव्ययम् ।।१४।।)

पंचस्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश का मनन न करनेवाले के सौ वर्ष के जीवन से उत्पत्ति और विनाश का मनन करनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

जेतवन किसागोतमी

११४. यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं ॥ १५ ॥
(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् अमृतं पदम्।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतोऽमृतं पदम् ॥१५॥)

निर्वाण को न देखनेवाले के सौ वर्ष के जीवन से, निर्वाण को देखनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

जेतवन बहुपुत्तिका (थेरी)

११५. यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं । १६ ॥
(यश्च वर्षशतं जीवेदपश्यन् धर्ममुत्तमम्।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतो धर्ममुत्तमम् ॥१६॥)

उत्तम धर्म को न देखनेवाले के सौ वर्ष के जीवन से, उत्तम धर्म को देखनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

●

९. पापवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) (चूल) एकसाटक (ब्राह्मण)

११६. अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मि रमते मनो ॥ १ ॥
(अभित्वरेत कल्याणे पापात् चित्तं निवारयेत् ।
तन्द्रितं हि कुर्वतः पुण्यं पापे रमते मनः ॥१॥)

पुण्य करने में शीघ्रता करे, पाप से चित्त को हटाये । पुण्य-कार्य को धीमी गति से करनेवाले का मन पाप में लग जाता है ।

जेतवन सेय्यसक (थेर)

११७. पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥ २ ॥
(पापं चेत् पुरुषः कुर्यात् न तत् कुर्यात् पुनः पुनः ।
त तस्मि छंदं कुर्यात्, दुःखं पापस्य उच्चयः ॥२॥)

मनुष्य यदि पाप कर दे तो बार-बार न करे । उसमें रत न होवे, क्योंकि पाप का संचय दु.खदायक है ।

जेतवन (लावा दायिका) देवकन्या

११८. पुञ्ञश्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ॥ ३ ॥
(पुण्यं चेत् पुरुषः कुर्यात्, कुर्याद् एतत् पुनः पुनः ।
तस्मि छन्दं कुर्यात् सुखं पुण्यस्य उच्चयः ॥३॥)

यदि मनुष्य पुण्य करे, तो उसे बार-बार करे । उसमें रत होवे, क्योंकि पुण्य का संचय सुखदायक होता है ।

जेतवन अनाथपिण्डिक (सेठ)

११९. पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥ ४ ॥

(पापोऽपि पश्यति भद्रं यावत् पापं न पच्यते।
यदा च पच्यते पापं अथ पापानि पश्यति ॥४॥)

जब तक पाप का फल नहीं मिलता है, तब तक पापी भी पाप को अच्छा ही समझता है, किन्तु जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप दिखाई पड़ने लगते हैं।

१२०. भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥ ५ ॥

(भद्रोऽपि पश्यति पापं यावत् भद्रं न पच्यते।
यदा च पच्यते भद्रं अथ भद्राणि पश्यति ॥५॥)

जब तक पुण्य का फल नहीं मिलता है, तब तक पुण्यात्मा भी पुण्य को बुरा समझता है, किन्तु जब पुण्य का फल मिलता है, तब उसे पुण्य दिखाई पड़ने लगते हैं।

जेतवन असंयमी (भिक्षु)

१२१. मावमञ्ञेथ पापस्स न मन्तं आगमिस्सति।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति।
पूरति बालो पापस्स थोकथोकम्पि आचिनं ॥ ६ ॥

(माऽवमन्येत पापं न मां तद् आगमिष्यति।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूर्यते।
बालः पूरयति पापं स्तोकं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥६॥)

"वह मेरे पास नहीं आयेगा"—ऐसा सोचकर पाप की अवहेलना न करे। जैसे पानी की बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है, ऐसे ही मूर्ख थोड़ा-थोड़ा संचय करते पाप को भर लेता है।

जेतवन बिलालपाद (सेठ)

१२२. मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
पूरति धीरो पुञ्ञस्स थोकथोकम्पि आचिनं ॥ ७ ॥

(माऽवमन्येत पुण्यं न मां तद् आगमिष्यति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूर्यते ।
धीरः पूरयति पुण्यं स्तोकं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥ ७ ॥)

"वह मेरे पास नहीं आवेगा"—ऐसा सोचकर पुण्य की अवहेलना न करे । जैसे पानी की बूँद के गिरने से घड़ा भर जाता है, ऐसे ही धीर थोड़ा-थोड़ा संचय करते पुण्य को भर लेता है ।

जेतवन महाधन (वणिक्)

१२३. वाणिजो व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामो व पापानि परिवज्जये ॥ ८ ॥

(वणिगिव भयं मार्गं अल्पसार्थो महाधनः ।
विषं जीवितुकाम इव पापानि परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥)

थोड़े सार्थ [=काफिला] और महाधन वाला व्यापारी जैसे भययुक्त मार्ग को छोड़ देता है, (या) जैसे जीने की इच्छा वाला विष को छोड़ देता हैं, वैसे ही पुरुष पापों को छोड़ दे ।

वेणुवन कुक्कुटमित्त (निषाद)

१२४. पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं ।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥ ९ ॥

(पाणौ चेद् व्रणो न स्याद् हरेत् पाणिना विषम् ।
नाव्रणं विषमन्वेति, नास्ति पापम् अकुर्वतः ॥ ९ ॥)

यदि हाथ में घाव न हो, और हाथ से विष ले जाय, तो घावरहित शरीर में विष नहीं लगता है, इसी प्रकार न करने वाले को पाप नहीं लगता ।

जेतवन कोक (कुत्ते का शिकारी)

१२५. यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।
तमेव बालं पच्चेति पापं सुखुमो रजो पटिवातं'व खित्तो ॥१०॥
(योऽल्पदुष्टाय नराय दुष्यति शुद्धाय पुरुषायाऽनङ्गणाय ।
तमेव बालं प्रत्येति पापं सूक्ष्मो रजः प्रतिवातमिव क्षिप्तम् ॥१०॥)

जो दोषरहित शुद्ध निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसी मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है, जैसे कि धूल हवा के आने के रुख फेंकने से वह फेंकनेवाले पर ही पड़ती है ।

जेतवन (माणिकारकुलूपग) तिस्स (थेर)

१२६. गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो ।
सग्गं सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा ॥ ११ ॥
(गर्भमेक उत्पद्यन्ते, निरयं पापकर्मिणः ।
स्वर्गं सुगतयो यान्ति, परिनिर्वान्त्यनास्रवाः ॥ ११ ॥)

कोई गर्भ में उत्पन्न होते हैं, कोई पाप-कर्म करने वाले नरक में जाते हैं, कोई सुगति वाले स्वर्ग को जाते हैं, और अनाश्रव (=क्षीणाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं ।

जेतवन तीन भिक्षु

१२७. न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्यट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ॥१२॥
(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स जगति प्रदेशो यत्रस्थितो मुच्येत पापकर्मा ॥१२॥)

न आकाश में न समुद्र के मध्य में न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर— संसार में कोई स्थान नहीं है, जहां रहकर पाप-कर्मों (के फल) से प्राणी बच सके ।

कपिलवस्तु सुप्पबुद्ध (शाक्य)

१२८. न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठितं नप्पसहेय्य मच्चू ॥१३॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये
न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।
न विद्यते स जगति प्रदेशो
यत्र स्थितं न प्रसहते मृत्युः ॥ १३ ॥)

न आकाश में न समुद्र के मध्य में, पर्वतों के विवर में प्रवेश कर— संसार में कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहनेवाले को मृत्यु न सतावे ।

◆

१०. दण्डवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) छब्बग्गिय (भिक्षु)

१२९. सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ १ ॥
(सर्वे त्रसन्ति दण्डात् सर्वे बिभ्यति मृत्योः ।
आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥ १ ॥)

दण्ड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं, अपने समान (इन बातों को) जानकर न (किसी को) मारे, न मारने की प्रेरणा करे ।

जेतवन छब्बग्गिय (भिक्षु)

१३०. सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ २ ॥
(सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वेषां जीवितं प्रियम् ।
आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥ २ ॥)

सभी दण्ड से डरते हैं, सबको जीवन प्रिय है, (इन बातों को) अपने समान जानकर न (किसी को) मारे और न मारने की प्रेरणा करे ।

जेतवन बहुत से लड़के

१३१. सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥ ३ ॥
(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिनस्ति ।
आत्मनः सुखमन्विष्य प्रेत्य स न लभते सुखम् ॥ ३ ॥)

जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता ।

१३२. सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥ ४ ॥
(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिनस्ति ।
आत्मनः सुखमन्विष्य प्रेत्य स लभते सुखम् ॥ ४ ॥)

जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से नहीं मारता है, वह मरकर सुख पाता है ।

जेतवन — कुण्डधान (थेर)

१३३. मावोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं ।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु तं ।। ५ ।।
(मा वोचः परुषं किंचिद् उक्ताः प्रतिवदेयुस्त्वाम् ।
दुःखा हि संरम्भकथाः प्रतिदण्डाः स्पृशेयुस्त्वाम् ।। ५ ।।)
१३४. सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।
एस पत्तोसि निब्बानं सारम्भो ते न विज्जति ।। ६ ।।
(स चेत् नेरयसि आत्मानं कांस्यमुपहतं यथा ।
एष प्राप्तोऽसि निर्वाणं संरम्भस्ते न विद्यते ।। ६ ।।)

कटु-वचन न बोलो, बोलने पर (दूसरे भी वैसे ही) तुझे बोलेंगे, प्रतिवाद दुःखदायक होता है, उसके बदले में तुझे दण्ड मिलेगा ।

यदि तू अपने को टूटे काँसा की भाँति निःशब्द कर लोगे, तो तूने निर्वाण ा लिया तेरे लिए प्रतिवाद नहीं ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) — विसाखा आदि (उपासिकायें)

१३५. यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।
एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेन्ति पाणिनं ।। ७ ।।
(यथा दण्डेन गोपालो गाः प्राजयति गोचरम् ।
एवं जरा च मृत्युश्चायुः प्राजयतः प्राणिनाम् ।। ७ ।।)

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा ौर मृत्यु प्राणियों की आयु को ले जाते हैं ।

राजगृह (वेणुवन) — अजगर (प्रेत)

१३६. अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति ।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्ढो'व तप्पति ।। ८ ।।
(अथ पापानि कर्माणि कुर्वन् बालो न बुध्यते ।
स्वैः कर्मभिः दुर्मेधा अग्निदग्ध इव तप्यते ।। ८ ।।)

पाप-कर्म करते समय मूर्ख उसे नहीं बूझता है, किन्तु पीछे (वह) दुर्बुद्धि अपने ही कर्मों के कारण आग से जले की भाँति अनुताप करता है।

राजगृह (वेणुवन) महामोग्गलान (थेर)

१३७. यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥ ९ ॥
(यो दण्डेनादण्डेष्वप्रदुष्टेषु दुष्यति।
दशानामन्यतमं स्थानं क्षिप्रमेव निगच्छति ॥ ९ ॥)

१३८. वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥ १० ॥
(वेदनां परुषां ज्यानिं शरीरस्य च भेदनम्।
गुरुकं वाऽप्याबाधं चित्तक्षेपं वा प्राप्नुयात् ॥ १० ॥)

१३९. राजतो वा उपस्सग्गं अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयं व ञातीनं भोगानं व पभङ्गुरं ॥ ११ ॥
(राजतो वोपसर्गमभ्याख्यानं वा दारुणम्।
परिक्षयं वा ज्ञातीनां भोगानां वा प्रभंजनम् ॥ ११ ॥)

१४०. अथवस्स अगारानि अग्गी डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो निरयं सो'पपज्जति ॥ ३२ ॥
(अथवाऽस्यागाराण्यग्निर्दहति पावकः।
कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञो निरयं स उपपद्यते ॥ १२ ॥)

जो दण्ड-रहितों को दण्ड से पीड़ित करता है, निर्दोष को दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन दस बातों में से एक को प्राप्त होता है—(१) कड़ी वेदना, (२) हानि, (३) अंग का भंग होना, (४) भारी रोग, या (५) चित्त-विक्षेप (=पागलपन) को प्राप्त होता है।

या (६) राजा से दण्ड को प्राप्त होता है, (७) भयानक निन्दा, (८) जाति-बन्धुओं का विनाश, (९) भोगों का क्षय, अथवा (१०) उसके घर को अग्नि=पावक जलाता है। काया छोड़ने पर वह दुर्बुद्धि नरक में उत्पन्न होता है।

जेतवन बहुभण्डिक (भिक्षु)

१४१. न नग्गचरिया न जटा न पङ्का
नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजो व जंल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥ १३ ॥

(न नग्नचर्या न जटा न पंकं नाऽनशनं स्थण्डिलशायिका वा।
रजोजलीयं उत्कुटिकप्रधानं शोधयन्ति मर्त्यं अवितीर्णकांक्षम् ॥१३॥)

जिस पुरुष के सन्देह समाप्त नहीं हुए हैं, उसकी शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से और न उकड़ूँ बैठने से होती है।

जेतवन सन्तति (महामात्य)

१४२. अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥ १४ ॥

(अलंकृतश्चेदपि शमं चरेत् शान्तो दान्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डं स ब्राह्मणः स श्रमणः स भिक्षुः ॥१४॥)

अलंकृत रहते हुए भी यदि वह शान्त, दान्त, नियत-ब्रह्मचारी तथा सारे प्राणियों के प्रति दण्ड-त्यागी है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है।

जेतवन पिलोतिक (थेर)

१४३. हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मि विज्जति।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥ १५ ॥

(ह्रीनिषेधः पुरुषः कश्चित् लोके विद्यते।
यो निन्दां न प्रबुध्यति अश्वो भद्रः कशामिव ॥ १५ ॥)

लोक में कोई पुरुष (ऐसा) होता है जो अपने ही लज्जा करके अकुशल (वितर्क) को नहीं करता, जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े को नहीं सह सकता, वैसे ही वह निन्दा को नहीं सह सकता।

१४४. अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ।
सद्धाय सीलेन च वीरियेन च
समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ॥
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता
पहस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं ॥ १६ ॥

(अश्वो यथा भद्रः कशानिविष्ट आतापिनः सवेगिनो भवत।
श्रद्धया शीलेन च वीर्येण च समाधिना धर्मविनिश्चयेन च।
सम्पन्नविद्याचरणाः प्रतिस्मृताः प्रहास्यथ दुःखमिदं अनल्पकम् ॥१६॥)

कोड़े पड़े उत्तम घोड़े की भाँति उद्योगी, संवेगवान् हो, श्रद्धा, आचार, वीर्य (=प्रयत्न), समाधि और धर्म के विनिश्चय से युक्त बन, विद्या और आचरण से समन्वित हो, स्मृतिमान् हो इस महान् दुःख को पार कर सकोगे।

जेतवन सुख श्रामणेर

१४५. उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥१७॥

(उदकं हि नयन्ति नेतृकाः, इषुकारा नमयन्ति तेजनम्।
दारुं नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति सुव्रताः ॥१७॥)

नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और सुव्रती अपना दमन करते हैं।

११. जरावग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) विशाखा की संगिनी

१४६. कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ १ ॥

(को नु हासः क आनन्दो नित्यं प्रज्वलिते सति ।
अन्धकारेणाऽवनद्धाः प्रदीपं न गवेषयथ ॥ १ ॥)

जब नित्य जल रहा है, तो हँसी कैसी ? आनन्द कैसा ? अन्धकार से घिरे प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते ?

राजगृह (वेणुवन) सिरिमा (गणिका)

१४७. पस्स चित्तकतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसंकप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति ॥ २ ॥

(पश्य चित्रीकृतं बिम्बं अरु-कायं समुच्छ्रितम् ।
आतुरं बहुसंकल्पं यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः ॥ २ ॥)

इस चित्रित शरीर को देखो, जो व्रणों से युक्त, फूला, पीड़ित तथा अनेक संकल्पों से युक्त है, जिसकी स्थिति अनित्य है ।

जेतवन उत्तरी (थेरी)

१४८. परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्डं पभङ्गुरं ।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं ॥ ३ ॥

(परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभङ्गुरम् ।
भिद्यते पूतिसन्देहो मरणान्तं हि जीवितं ॥ ३ ॥

यह रूप जीर्ण, रोगों का घर और भङ्गुर है । यह गन्दा शरीर विनाश को प्राप्त हो जाता है । जीवन मृत्यु-पर्यन्त होता है ।

जेतवन बहुत से अधिमानक (भिक्खु)

१४९. यानि'मानि अपत्थानि अलाबूनेव सारदे ।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ।।४।।
(यानीमान्यपथ्यान्यलाबूनीव शरदि ।
कापोतकान्यस्थीनि तानि दृष्ट्वा का रतिः ।। ४ ।।)

शरद-काल की फेंकी (गई) अपथ्य लौकी की भाँति (कुम्हलाए हुए मृत-शरीर को देखकर) या कबूतर की सी सफेद (श्मशान में पड़ी) उन हड्डियों को देखकर रति कैसी ?

जेतवन जनपदकल्याणी रूपनन्दा (थेरी)

१५०. अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं ।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ।।५।।
(अस्थ्नां नगरं कृतं मांसलोहितलेपनम् ।
यत्र जरा च मृत्युश्च मानो म्रक्षश्चावहितः ।। ५ ।।)

हड्डियों का नगर बना है, जो मांस और रक्त से लेपा गया है; जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं ।

जेतवन मल्लिका देवी

१५१. जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता अथो सरीरम्पि जरं उपेति ।
सतं च धम्मो न जरं उपेति सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ।।६।।
(जीर्यन्ति वै राजरथाः सुचित्रा अथ शरीरमपि जरामुपेति ।
सतां च धर्मो न जरामुपेति सन्तो हवै सद्भ्यः प्रवेदयन्ति ।। ६ ।।

राजा के सुचित्रित रथ पुराने हो जाते हैं तथा यह शरीर भी पुराना हो जाता है, किन्तु सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता । सन्त लोग सन्तों से ऐसा ही कहते हैं !

जेतवन (लाल) उदायी (थेर)

१५२. अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो'व जीरति ।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति ।।७।।
(अल्पश्रुतोऽयं पुरुषो बलीवर्द इव जीर्यति ।
मांसानि तस्य वर्द्धन्ते प्रज्ञा तस्य न वर्द्धते ।। ७ ।।)

यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की तरह बढ़ता है। उसके मांस तो बढ़ते हैं, किन्तु उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती।

बुद्धगया (बोधिवृक्ष के नीचे) आनन्द थेर (उदानगाथा)

१५३. अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ।।८।।
१५४. गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं।।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ।।९।।

(अनेकजातिसंसारं समधाविषं अनिविशमानः।
गृहकारकं गवेषयन्, दुःखा जातिः पुनः पुनः ।। ८ ।।
गृहकारक, दृष्टोऽसि पुनर्गेहं न करिष्यसि।
सर्वास्ते पार्शिवका भग्ना गृहकूटं विसंस्कृतम्।
विसंस्कारगतं चित्तं तृष्णानां क्षयमध्यगात् ।। ९ ।।)

बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा। (इस काया रूपी) गृह को बनाने वाले (=तृष्णा) को खोजते पुनः पुनः दुःख (-मय) जन्म में पड़ता रहा। हे गृहकारक ! (=तृष्णे !) मैंने तुझे देख लिया, अब फिर तू घर नहीं बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गयीं, गृह का शिखर गिर गया। चित्त संस्काररहित हो गया। अर्हत्व (=तृष्णा-क्षय) प्राप्त हो गया।

वाराणसी (ऋषिपत्तन) महाधनी सेठ का पुत्र

१५५. अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चा'व झायन्ति खीणमच्छे'व पल्लले ।।१०।।
(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम्।
जीर्णक्रौंच इव क्षीयन्ते क्षीणमत्स्य इव पल्वले ।। १० ।।)

ब्रह्मचर्य का बिना पालन किये, जवानी में धन को बिना कमाये, (मनुष्य) मछलियों से क्षीण जलाशय में बूढ़े क्रौंच पक्षी की भाँति (वृद्धावस्था में) चिन्ता को प्राप्त होते हैं।

१५६. अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं ।
सेन्ति चापातिखित्ता'व पुराणानि अनुत्थुनं ।।११।।
(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।
शेरते चापोऽतिक्षिप्त इव पुराणान्यनुतन्वन्तः ॥ ११ ॥)

ब्रह्मचर्य के बिना पालन किये, जवानी में धन को बिना कमाये, (मनुष्य-वृद्धावस्था में) धनुष से छोड़े गये बाण की भाँति अपनी पुरानी बातों को ही कह-कहकर चिन्तित होते सोते हैं ।

◆

१२. अत्तवग्गो

सुंसुमारगिरि (भेसकलावन)   बोधि राजकुमार

१५७. अत्तानं चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य तं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्ञतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो ।।१।।
(आत्मानं चेत् प्रियं जानीयाद् रक्षेत्तं सुरक्षितम् ।
त्रयाणामन्यतमं यामं प्रतिजागृयात् पण्डितः ।। १ ।।)

अपने को यदि प्रिय समझे, तो अपने को सुरक्षित रखे । पण्डित तीनों में से किसी एक पहर* में आवश्यक जागरण करे ।

जेतवन   शाक्यपुत्र उपनन्द (थेर)

१५८. अत्तानमेव पठमं पतिरूपे निवेसये ।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ।।२।।
(आत्मानमेव प्रथमं प्रतिरूपे निवेशयेत् ।
अथान्यमनुशिष्यात् न क्लिश्येत् पण्डितः ।। २ ।।)

पहले अपने को ही उचित (काम) में लगावे, बाद में दूसरे को उपदेश दे । इस तरह पण्डित क्लेश को न प्राप्त होगा ।

जेतवन   (अभ्यासी) तिस्स (थेर)

१५९. अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ।।३।।
(आत्मानं चेत् तथा कुर्यात् यथाऽन्यमनुशास्ति ।
सुदान्तो वत दमयेद्, आत्मा हि किल दुर्दमः ।। ३ ।।)

अपने को वैसा बनावे, जैसा दूसरे को अनुशासन करता है; (पहले) अपने को भली प्रकार दमन करके दूसरे का दमन करे, वस्तुतः अपने को दमन करना (ही) कठिन है ।

14443

---

* यहाँ तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था को 'पहर' कहकर शास्ता दिखा रहे हैं—अट्ठकथा ।

जेतवन कुमारकस्सप की माता (थेरी)

१६०. अत्ता हि अत्तनो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना'व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥४॥
(आत्मा हि आत्मनो नाथः को हि नाथः परः स्यात् ।
आत्मनैव सुदान्तेन नाथं लभते दुर्लभम् ॥ ४ ॥)

व्यक्ति अपना स्वामी आप है, भला दूसरा कोई उसका स्वामी क्या होगा ? अपने ही को अच्छी तरह दमन कर लेने से वह दुर्लभ स्वामी (=निर्वाण) को पाता है ।

जेतवन महाकाल (उपासक)

१६१. अत्तना'व कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं ।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं'व' स्ममयं मणिं ॥५॥
(आत्मनैव कृतं पापं आत्मजं आत्मसम्भवम् ।
अभिमथ्नाति दुर्मेधसं वज्रमिवाश्ममयं मणिम् ॥ ५ ॥)

अपने से जात, अपने से उत्पन्न, अपने से किया पाप (करने वाले) दुर्बुद्धि को उसी प्रकार पीड़ित करता है जिस प्रकार कि पाषाण से निकला वज्र पाषाणमय मणि को छेद डालता है ।

वेणुवन देवदत्त

१६२. यस्सच्चन्तदुस्सील्यं मालुवा सालमिवोततं ।
करोति सो तथत्तानं यथा नं इच्छति दिसो ॥६॥
(यस्यात्यन्तदौःशील्यं मालुवा शालमिवाततम् ।
करोति स तथात्मानं यथैनमिच्छंति द्विषः ॥ ६ ॥)

मालुवा लता से वेष्ठित साखू के पेड़ की भाँति जिसका दुराचार फैला हुआ है; वह अपने को वैसा ही कर लेता है, जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं ।

राजगृह (वेणुवन) संघ में फूट के समय

१६३. सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।
यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥७॥
(सुकराण्यसाधून्यात्मनोऽहितानि च ।
यद् वै हितं च साधु च तद् वै परमदुष्करम् ॥ ७ ॥)

बुरी बातों का करना बड़ा आसान है जिनसे अपना ही अहित होता है, (किन्तु) उसे करना बड़ा दुष्कर है जो अच्छा और हितकर है ।

जेतवन   काल (थेर)

१६४. यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं जिस्साय पापिकं ।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तधञ्ञाय फल्लति ॥८॥
(यः शासनमर्हतां आर्याणां धर्मजीविनाम् ।
प्रतिक्रुश्यति दुर्मेधा दृष्टि निःश्रित्य पापिकाम् ।
फलानि काष्ठकस्यैवात्महत्यायै फलति ॥ ८ ॥)

जो धर्मात्मा श्रेष्ठ अर्हतों के शासन की—अपनी पापमयी मिथ्या धारणा के कारण निन्दा करता है, वह अपनी ही बरबादी करता है, जैसे बाँस अपने ही विनाश के लिए फलता है ।

जेतवन   चूलकाल (उपासक)

१६५. अत्तना'व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकतं पापं अत्तना'व विसुज्झति ।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥९॥
(आत्मनैव कृतं पापं आत्मना संक्लिश्यति ।
आत्मनाऽकृतं पापं आत्मनैव विशुध्यति ।
शुद्धयशुद्धी प्रत्यात्मं नाऽन्योऽन्यं विशोधयेत् ॥ ९ ॥)

अपना किया पाप अपने को मलिन करता है । अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है । शुद्धि और अशुद्धि अपने ही से होती है । दूसरा (आदमी) दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।

जेतवन   अत्तदत्थ (थेर)

१६६. अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये ।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ॥१०॥
(आत्मनोऽर्थं परार्थेन बहुनाऽपि न हापयेत् ।
आत्मनोऽर्थमभिज्ञाय सदर्थप्रसितः स्यात् ॥ १० ॥

पराये के बहुत हित के लिए भी अपने हित की हानि न करे । अपने अर्थ की बात को समझ कर अपने ही अर्थ के साधन में लग जाय । ● ●

१३. लोकवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) कोई अल्पवयस्क भिक्षु

१६७. हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे ।
मिच्छादिट्ठिं नसेवेय्य न सिया लोकवड्ढनो ॥१॥
(हीनं धर्मं न सेवेत, प्रमादेन न संवसेत् ।
मिथ्यादृष्टिं न सेवेत, न स्यात् लोकवर्द्धनः ॥ १ ॥)

नीच धर्म का सेवन न करे, प्रमाद से न रहे, मिथ्या धारणा में न पड़े, आवागमन का चक्र न बढ़ावे ।

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) शुद्धोदन (पिता)

१६८. उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥२॥
(उत्तिष्ठेत् न प्रमाद्येत धर्मं सुचरितं चरेत् ।
धर्मचारी सुखं शेतेऽस्मिंल्लोके परत्र च ॥ २ ॥)

उठे, प्रमाद न करे, सुचरित धर्म का आचरण करे । धर्मचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है ।

१६९. धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥३॥
(धर्मं चरेत् सुचरितं न तं दुश्चरितं चरेत् ।
धर्मचारी सुखं शेतेऽस्मिन् लोके परत्र च ॥ ३ ॥

सुचरित धर्म का आचरण करे, दुराचरण न करे । धर्मचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है ।

जेतवन पाँच सौ विपश्यक (भिक्षु)

१७०. यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥४॥
(यथा बुद्बुदकं पश्येद् यथा पश्येत् मरीचिकाम् ।
एवं लोकमवेक्षमाणं मृत्युराजो न पश्यति ॥ ४ ॥)

जो इस लोक को बुलबुले की तरह और मृग-मरीचिका की तरह देखे, उस ऐसे देखनेवाले को यमराज नहीं देखता।

राजगृह (वेणुवन) अभय राजकुमार

१७१. एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि सङ्गो विजानतं ॥५॥
(एत पश्यतेमं लोकं चित्रं राजरथोपमम्।
यत्र बाला विषीदन्ति नास्ति संगो विजानताम् ॥ ५ ॥)

आओ, चित्रित राज-रथ के समान इस लोक को देखो, जिसमें मूर्ख फँस जाते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुषों को आसक्ति नहीं होती।

जेतवन सम्मुञ्जनि (थेर)

१७२ यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥६॥
(यश्च पूर्वं प्रमाद्य पश्चात् स न प्रमाद्यति।
स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥ ६ ॥)

जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता, वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति प्रकाशित करता है।

जेतवन अंगुलिमाल (थेर)

१७३. यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥७॥
(यस्य पापं कृतं कर्म कुशलेन पिधीयते।
स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥ ७ ॥)

जिसका किया पाप-कर्म उसके पुण्य से ढँक जाता है, वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति प्रकाशित करता है।

आलवी (अग्गालव चैत्य) बुनकर की कन्या

१७४. अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तो'व अप्पो सग्गाय गच्छति ॥८॥

(अन्धभूतोऽयं लोकः, तनुकोऽत्र विपश्यति ।
शकुन्तो जालमुक्त इवाल्पः स्वर्गाय गच्छति ॥ ८ ॥)

यह लोक अन्धे के सदृश है; यहाँ देखनेवाले ही हैं, जाल से मुक्त पक्षी की भाँति विरले ही स्वर्ग जाते हैं ।

जेतवन तीस भिक्षु

१७५. हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया ।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिनिं ॥९॥
(हंसा आदित्यपथे यन्ति, आकाशे यन्ति ऋद्धिया ।
नीयन्ते धीरा लोकात् जित्वा मारं सवाहिनीकम् ॥ ९ ॥)

हंस आकाश (=सूर्य-पथ) से जाते हैं, ऋद्धि से योगी भी आकाश से जाते हैं । पण्डित पुरुष सेना-सहित मार को पराजित कर लोक से (निर्वाग) को चले जाते हैं।

जेतवन चिंचा (माणविका)

१७६. एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥१०॥
(एकं धर्ममतीतस्य मृषावादिनो जन्तोः ।
वितीर्णपरलोकस्य नास्ति पापकार्यम् ॥ १० ॥)

एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है, उस परलोक की चिन्ता से रहित पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता, जो वह न कर सके ।

जेतवन प्रसेनजित् (असदृश दान)

१७७. न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति
बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥११॥
(न [वै] कदर्या देवलोकं व्रजंति बाला ह वै न प्रशंसंति दानम् ।
धीरश्च दानं अनुमोदमानस्तेनैव स भवति सुखी परत्र ॥११॥)

कंजूस देवलोक नहीं जाते, मूर्ख दान की प्रशंसा नहीं करते; पण्डित दान का अनुमोदन कर, उसी (कर्म) से परलोक में सुखी होता है।

जेतवन काल (अनाथपिण्डिक का पुत्र)

१७८. पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं ॥१२॥
(पृथिव्या एकराज्यात् स्वर्गस्य गमनाद् वा ।
सर्वलोकाऽऽधिपत्याद् वा स्रोतापत्तिफलं वरम् ॥ १२ ॥)

सारी पृथ्वी का अकेला राजा होने से या स्वर्ग के गमन से अथवा सारे लोक का स्वामी हो जाने सें भी स्रोतापत्ति-फल श्रेष्ठ है।

●

१४. बुद्धवग्गो

उरुवेला (बोधिमंड) मार की पुत्रियाँ

१७९. यस्स जितं नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं आपदं केन पदेन नेस्सथ ॥१॥
(यस्य जितं नावजीयते जितमस्य न याति कश्चिल्लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेष्यथ ? ॥ १ ॥)

जिसका जीता बेजीता नहीं किया जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौटते, उस अनन्तगोचर (=अनन्त को देखनेवाले) अ-पद बुद्ध को किस पद से ले जाओगे ?

१८०. यस्स जालिनी विसत्तिका तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥१॥
(यस्य जालिनी विषात्मिका तृष्णा नास्ति कुत्रचित् नेतुम् ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेष्यथ ? ॥ २ ॥)

जिसकी जाल फैलाने वाली विष रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने योग्य नहीं रही, उस अनन्तगोचर अ-पद बुद्ध को किस पद से ले जाओगे ?

संकाश्य नगर बहुत से देवता और मनुष्य

१८१. ये झानपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता ।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतम् ॥३॥
(ये ध्यानप्रसिता धीरा नैष्कर्म्योपशमे रताः ।
देवा अपि तेषां स्पृहयन्ति संबुद्धानां स्मृतिमताम् ॥ ३ ॥)

जो धीर ध्यान में लगे, परम शान्त निर्वाण में रत हैं, उन स्मृतिमान् बुद्धों को देवता भी चाहते हैं ।

वाराणसी एरकपत्त (नागराज)

१८२. किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चान जीवितं ।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥४॥

(कृच्छ्रो मनुष्यप्रतिलाभः कृच्छ्रं मर्त्यानां जीवितम् ।
कृच्छ्रं सद्धर्मश्रवणं कृच्छ्रो वुद्धानां उत्पादः ॥ ४ ॥)

मनुष्य का जन्म पाना कठिन है, मनुष्य का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और वुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है ।

जेतवन आनन्द (थेर)

१८३. सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्तपरियोदपनं एतं वुद्धान' सासनं ॥५॥
(सर्वपापस्याकरणं कुशलस्योपसम्पदा ।
स्वचित्तपर्यवदापनं एतद् वुद्धानां शासनम् ॥ ५ ॥)

सभी पापों को न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यह वुद्धों की शिक्षा है ।

१८४. खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा ।
न हि पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयन्तो ॥६॥
(क्षान्तिः परमं तपः तितिक्षा निर्वाणं वदन्ति बुद्धाः ।
नहि प्रव्रजितः परोपघाती श्रमणो भवति परं विहेठयन् ॥ ६ ॥)

सहन-शीलता और क्षमा-शीलता परम तप हैं, वुद्ध लोग निर्वाण को परम (=उत्तम) बताते हैं । दूसरों का घात करने वाला और सताने वाला प्रव्रजित श्रमण नहीं होता ।

१८५. अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मि पन्तञ्च सायनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान' सासनं ॥७॥
(अनुपवादोऽनुपघातः प्रातिमोक्षे च संवरः ।
मात्राज्ञता च भक्ते प्रान्तं च शयनासनम् ।
अचित्ते चायोग एतद् बुद्धानां शासनम् ॥ ७ ॥)

निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना—यह बुद्धों की शिक्षा है ।

जेतवन　　　　एक उदास भिक्षु

१८६. न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पंडितो ।।८।।
१८७ अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खरतो होति सम्मासंबुद्धसावको ।।९।।
(न कार्षापणवर्षेण तृप्तिः कामेषु विद्यते।
अल्पास्वादा दुःखाः कामा इति विज्ञाय पण्डितः ।। ८ ।।)
अपि दिव्येषु कामेषु रतिं स नाऽधिगच्छति।
तृष्णाक्षयरतो भवति सम्यक् संबुद्धश्रावकः ।। ९ ।।)

यदि कार्षापणों (=रुपयों) की वर्षा हो तो भी मनुष्य की कामों (=भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती। सभी काम (=भोग) अल्प-स्वाद और दुःखद हैं, ऐसा जानकर पण्डित देवलोक के भोगों में भी रति नहीं करता, और सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक तृष्णा को नाश करने में लगता है।

जेतवन　　　　अग्गिदत्त (ब्राह्मण)

१८८. बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ।।१०।।
१८९. नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ।।११।।
(बहु वै शरणं यन्ति पर्वतान् वनानि च।
आरामवृक्षचैत्यानि मनुष्या भयतर्जिताः ।। १० ।।
नैतत् खलु शरणं क्षेमं नैतत् शरणमुत्तमम्।
नैतत् शरणमागत्य सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ।। ११ ।।)

मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (=उद्यान), वृक्ष, चैत्य (=चौरा) आदि को देवता मान उनकी शरण में जाते हैं, किन्तु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं; क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

१९०. यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च संघञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ।।१२।।

१९१. दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥१३॥
११२. एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥१४॥

(यश्च बुद्धं च धर्मं च संघं च शरणं गतः ।
चत्वार्यार्यसत्यानि सम्यक् प्रज्ञया पश्यति ॥ १२ ॥
दुखं दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।
आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ॥ १३ ॥
एतत् खलु शरणं क्षेमं एतत् शरणमुत्तमम् ।
एतत् शरणमागत्य सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥ १४ ॥)

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्यसत्यों—दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य आष्टाङ्गिक मार्ग को सम्यक् प्रज्ञा से देख लिया है, यही मंगलदायक शरण है। यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर (व्यक्ति) सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

जेतवन आनन्द (थेर)

१९३. दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति ।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥१५॥

(दुर्लभः पुरुषाजानेयो न स सर्वत्र जायते ।
यत्र स जायते धीरः तत् कुलं सुखमेधते ॥ १५ ॥)

उत्तम-पुरुष दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, वह धीर (पुरुष) जहाँ उत्पन्न है, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है।

जेतवन बहुत से भिक्षु

१९४. सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना ।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥१६॥

(सुखो बुद्धानां उत्पादः सुखा सद्धर्म-देशना ।
सुखा संघस्य सामग्री समग्राणां तपः सुखम् ॥ १६ ॥)

सुखदायक है बुद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्धर्म का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकतायुक्त ही तप करना।

चारिका के समय कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य के प्रति

१९५. पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके ।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥१७॥
१९६. ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये ।
न सक्का पुञ्ञं सुखातुं इमेत्तम्पि केनचि ॥१८॥

(पूजार्हान् पूजयतो बुद्धान् यदि वा श्रावकान् ।
प्रपंचसमतिक्रान्तान् तीर्णशोकपरिद्रवान् ॥ १७ ॥
तान् तादृशान् पूजयतो निर्वृतान् अकुतोभयान् ।
न शक्यं पुण्यं संख्यातुं एवम्मात्रमपि केनचित् ॥ १८ ॥)

पूजनीय बुद्धों, अथवा (उनके) श्रावकों की—जो संसार को अतिक्रमण कर गये हैं, जो शोक-भय को पार कर गये हैं——पूजा के, (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भय (पुरुषों) की पूजा के; पुण्य का परिमाण "इतना है"——यह किसी से भी नहीं कहा जा सकता।

●

१५. सुखवग्गो

शाक्य जनपद — जातिकलहके उपशमनार्थ

१९७. सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥१॥
१९८- सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥२॥
१९९. सुसुखं वत ! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका ।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥३॥
(सुसुखं वत ! जीवाम वैरिष्ववैरिणः ।
वैरिषु मनुष्येषु विहरामोऽवैरिणः ॥ १ ॥
सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेष्वनातुराः ।
आतुरेषु मनुष्येषु विहरामोऽनातुराः ॥ २ ॥
सुसुखं वत ! जीवाम उत्सुकेष्वनुत्सुकाः ।
उत्सुकेषु मनुष्येषु विहराम अनुत्सुकाः ॥ ३ ॥)

वैरियों में अवैरी हो; अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं ।

पीड़ित मनुष्यों से पीड़ा रहित हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन विता रहे हैं; पीड़ित मनुष्यों के बीच पीड़ा रहित होकर हम विहार करते हैं ।

आसक्त मनुष्यों में अनासक्त हो; अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं, आसक्त मनुष्यों के अनासक्त होकर हम विहार करते हैं ।

पंचसाला (ब्राह्मणग्राम, मगध) — मार

२००. सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सारा यथा ॥४॥
(सुसुखं वत ! जीवाम येषां नो नास्ति किंचन ।
प्रीतिभक्ष्या भविष्यामो देवा आभास्वरा यथा ॥ ४ ॥)

जिन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो ! वे हम लोग कितने सुख से जीवन बिता रहे हैं। हम आभास्वर के देवताओं की भाँति प्रीति-भक्ष्य (= प्रीति ही भोजन है जिनका) होंगे।

जेतवन प्रसेनजित् (कोसलराज)

२०१ जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं॥ ५॥
(जयो वैरं प्रसूते दुःखं शेते पराजितः।
उपशान्तः सुखं शेते हित्वा जयपराजयौ॥ ५॥)

विजय वैर को उत्पन्न करती है, पराजित (पुरुष) दुःख की नींद सोता है, (किन्तु राग आदि दोष जिसके) शान्त हैं, वह पुरुष जय और पराजय को छोड़ सुख की नींद नहीं सोता है।

जेतवन कोई कुलकन्या

२०२. नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं॥ ६॥
(नास्ति रागसमोऽग्निः, नास्ति द्वेषसमः कलिः।
नास्ति स्कन्धसमा दुःखाः, नास्ति शान्तिपरं सुखम्॥६॥)

राग के समान अग्नि नहीं है, द्वेष के समान मल नहीं है, (पंच-) स्कन्ध * के समान दुःख नहीं, (और) निर्वाण से बढ़कर सुख नहीं है।

आलवी एक उपासक

२०३. जिघच्छा परमा रोगा, संखारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथा भूतं निब्बानं परमं सुखं॥ ७॥
(जिघत्सा परमो रोगः संस्कारः परमं दुखम्।
एतद् ज्ञात्वा यथाभूतं निर्वाणं परमं सुखम्॥७॥)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

---

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान —ये पंचस्कन्ध हैं।

जेतवन   प्रसेनजित् (कोसलराज)

२०४. आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।
विस्सासपरमा ञाती निब्बानं परमं सुखं ॥ ८ ॥

(आरोग्यं परमो लाभः सन्तुष्टिः परमं धनम् ।
विश्वासः परमा ज्ञातिः, निर्वाणं परमं सुखम् ॥८॥)

निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख है ।

वैशाली   तिस्स थेर

२०५. पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च ।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥ ९ ॥

(प्रविवेक रसं पीत्वा रसं उपशमस्य च ।
निर्दरो भवति निष्पापो धर्म प्रीतिरसं पिबन् ॥९॥)

एकान्त-चिन्तन तथा उपशम (=शान्ति) के रस को पीकर धर्म के प्रेम-रस का पान करता हुआ (पुरुष रागादि की) पीड़ा से रहित तथा निष्पाप हो जाता है ।

वेलुवग्राम (वेणुग्राम, वैशाली के पास)   शक्र (देवराज)

२०६. साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥ १० ॥

(साधुदर्शनमार्याणां सन्निवासः सदा सुखः ।
अदर्शनेन बालानां नित्यमेव सुखी स्यात् ॥१०॥)

आर्यों का दर्शन सुन्दर है, उनके साथ निवास सदा सुखदायक होता है, मूढ़ों के दर्शन न होने से मनुष्य सदा सुखी रहता है ।

२०७. बालसंगतिचारी हि दीघमद्धान सोचति ।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा ।
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं'व समागमो ॥ ११ ॥

(बालसंगतिचारी हि दीर्घमध्वानं शोचति ।
दुःखो बालैः संवासोऽमित्रेणेव सर्वदा ।
धीरश्च सुखसंवासो ज्ञातीनामिव समागमः ॥११॥)

मूढ़ों की संगति में रहने वाला दीर्घकाल तक शोक करता है, मूढ़ों का सहवास शत्रु की तरह सदा दुःखदायक होता है। बन्धुओं के समागम की भांति धीरों का सहवास सुखद होता।

२०८. तस्माहि :—

धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुस्सुतं च धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं भजेथ नक्खत्तपथं'व चन्दिमा ॥ १२ ॥

(तस्माद्धि धीरं च प्राज्ञं च बहुश्रुतं च
धुर्यशीलं व्रतवन्तमार्यम्।
तं तादृशं सत्पुरुषं सुमेधसं
भजेत नक्षत्रपथमिव चंद्रमा ॥१२॥)

इसलिये—

वैसे धीर, ज्ञानी, बहुश्रुत, शीलवान्, व्रतसम्पन्न, आर्य तथा बुद्धिमान् पुरुष का अनुगमन उसी भाँति करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का।

●

१६. पियवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) तीन भिक्षु

२०९. अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं ॥ १ ॥

(अयोगे युंजन्नात्मानं योगे चायोजयन्।
अर्थं हित्वा प्रिय-ग्राही स्पृहयेदात्मानुयोगिनम् ॥१॥)

बुरे कर्म में लगा हुआ, अच्छे कर्म में न लगने वाला तथा परमार्थ को छोड़ संसार के आकर्षण में लगने वाला पुरुष उस पुरुष की स्पृहा करे, जो आत्म-उन्नति में लगा है।

२१०. मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥ २ ॥

(मा प्रियैः समागच्छ, अप्रियैः कदाचन।
प्रियाणां अदर्शनं दुःखं, अप्रियाणां च दर्शनम् ॥२॥)

प्रियों का संग न करे और न कभी अप्रियों का। प्रियों का न देखना दुःखद है और अप्रियों का देखना।

२११. तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

(तस्मात् प्रियं न कुर्यात् प्रियापायो हि पापकः।
ग्रन्थाः तेषां न विद्यन्ते येषां नास्ति प्रियाप्रियम् ॥३॥)

इसलिए प्रिय न बनावे। प्रिय से वियोग बुरा होता है। उन्हें कोई बन्धन नहीं है तो जिन्हें न तो प्रिय है न अप्रिय।

जेतवन कोई कुटुम्बी

२१२. पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ४ ॥

(प्रियतो जायते शोकः प्रियतो जायते भयम् ।
प्रियतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥४॥)

प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता हैं, प्रिय से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहां से ?

जेतवन विशाखा उपासिका

२१३. पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं ।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ५ ॥

(प्रेमतो जायते शोकः प्रेमतो जायते भयम् ।
प्रेमतो विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥५॥)

प्रेम सें शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

वैशाली (कूटागारशाला) लिच्छवी लोग

२१४. रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ६ ॥

(रत्या जायते शोको रत्या जायते भयम् ।
रत्या विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥६॥)

रति (=राग) से शोक उत्पन्न होता है, रति से भय उत्पन्न होता है, रति से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

जेतवन अनित्थिगन्धकुमार

२१५. कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ७ ॥

(कामतो जायते शोकः कामतो जायते भयम् ।
कामतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥७॥)

काम से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है, काम से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

जेतवन कोई ब्राह्मण

२१६. तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ८॥
(तृष्णाया जायते शोकः तृष्णाया जायते भयम्।
तृष्णाया विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥८॥)

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है, तृष्णा से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

राजगृह (वेणुवन) पाँच सौ बालक

२१७. सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं॥ ९॥
(शीलदर्शनसम्पन्नं धर्मिष्ठं सत्यवादिनम्।
आत्मनः कर्म कुर्वाणं तं जनः कुरुते प्रियम् ॥९॥)

जो शील और दर्शन (=सम्यक् दृष्टि) से सम्पन्न, धर्म में स्थित, सत्यवादी और अपने कामों को करने वाला है, उस (पुरुष) को लोग प्रेम करते हैं।

जेतवन एक अनागामी थेर

२१८. छन्दजातो अनक्खातो मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धंसोतो'ति वुच्चति॥ १०॥
(छन्दजातोऽनाख्याते मनसा च स्फुरितः स्यात्।
कामेषु चाऽप्रतिबद्धचित्त ऊर्ध्वस्रोता इत्युच्यते ॥१०॥)

जो निर्वाण (=अकथ्य) का अभिलाषी है, उसमें जिसका मन लगा है, काम-भोगों में जिसका चित्त बद्ध नहीं, वह ऊर्ध्व-स्रोत कहा जाता है।

ऋषिपतन नंदिय

२१९. चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं॥ ११॥

२२०. तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मा लोका परं गतं।
पुञ्ञानि पतिगण्हन्ति पियं ञातीव आगतं॥ १२॥

(चिरप्रवासिनं पुरुषं दूरतो स्वस्त्यागतम् ।
ज्ञातिमित्राणि सुहृदश्चाऽभिनन्दन्त्यागतम् ॥११॥)
(तथैव, कृतपुण्यमप्यस्मात् लोकात् परं गतम् ।
पुण्यानि प्रतिगृह्णन्ति प्रियं ज्ञातिमिवागतम् ॥१२॥)

जैसे बहुत दिनों तक विदेश में रहने के बाद दूर से सकुशल घर आये पुरुष का जाति-भाई, मित्र और हितैषी स्वागत करते हैं;

वैसे ही इस लोक से परलोक गये पुण्यात्मा पुरुष का उसके पुण्य अपने सम्बन्धी के समान स्वागत करते हैं ।

१७. कोधवग्गो

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) रोहिणी (क्षत्रिय कन्या)

२२१. कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं
सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नामरूपस्मि असज्जमानं
अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ।। १ ।।

(क्रोधं जह्याद् विप्रजह्यात् मानं संयोजनं सर्वमतिक्रमेत ।
तं नाम-रूपयोरसज्यमानं अकिंचनं नाऽनुपतन्ति दुःखानि ।।१।।)

क्रोध को छोड़े, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (=बन्धनों) से पार हो जाये, ऐसे नाम-रूप में आसक्त न होने वाले तथा परिग्रहरहित को दुःख सन्ताप नहीं देते ।

आलवी (अग्गालव चैत्य) कोई भिक्षु

२२२. यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं'व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरो जनो ।। २ ।।

(यो वै उत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तमिव धारयेत् ।
तमहं सारथिं ब्रवीमि, रश्मिग्राह इतरो जनः ।।२।।)

जो चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भाँति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं ।

राजगृह (वेणुवन) उत्तरा (उपासिका)

२२३. अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ।। ३ ।।

(अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन सत्येनाऽलीकवादिनम् ।।३।।)

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता (=भलाई) से जीते, कंजूस को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते ।

जेतवन — महामोग्गल्लान (थेर)

२२४. सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥ ४ ॥
(सत्यं भणेत् न कुध्येत्, दद्यादल्पेऽपि याचितः ।
एतैस्त्रिभिः स्थानैः गच्छेद् देवानामन्तिके ।।४।।)

सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी मांगने पर दे, इन तीन बातों से (पुरुष) देवताओं के पास जाता है ।

साकेत (अञ्जन वन) — साकेतवासी ब्राह्मण के प्रति

२२५. अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता ।
ये यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥ ५ ॥
(अहिंसका ये मुनयो नित्यं कायेन संवृताः ।
ते यन्ति अच्युतं स्थानं यत्र गत्वा न शोचन्ति ।।५।।)

जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर में संयत हैं, वे उस अच्युत-पद को प्राप्त करते हैं जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते ।

राजगृह (गृध्रकूट) — पूर्णा (राजगृह-श्रेष्ठी की दासी)

२२६. सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं ।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ६ ॥
(सदा जाग्रतां अहोरात्रं अनुशिक्षमाणानाम् ।
निर्वाणं अधिमुक्तानां अस्तं गच्छन्ति आस्रवाः ।।६।।)

सदा जागरणशील हो दिन-रात योगाभ्यास में लगे रहने वाले तथा निर्वाण के उद्देश्य वाले (पुरुषों) के आश्रव नष्ट हो जाते हैं ।

जेतवन — अतुल (उपासक)

२२७. पोराणमेतं अतुल ! नेतं अज्जतनामिव ।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ।
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ॥ ७ ॥

२२८. न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्तं वा पसंसितो ॥ ८ ॥

(पुराणमेतद् अतुल ! नैतद् अद्यतनमेव ।
निन्दन्ति तूष्णीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनम् ।
मितभाणिनमपि निन्दन्ति नाऽस्ति लोकेऽनिन्दितः ॥७॥)
(न चाऽभूत् न च भविष्यति न चैतर्हि विद्यते ।
एकान्तं निन्दितः पुरुषः एकान्तं वा प्रशंसितः ॥८॥)

हे अतुल ! यह पुरानी बात है, आज की नहीं— लोग चुप बैठे हुए की निन्दा करते हैं और बहुत बोलने वाले की भी । मितभाषी की भी निन्दा करते हैं; लोक में अ-निन्दित कोई नहीं है । बिल्कुल ही निन्दित या बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न था, न होगा और न आजकल हैं ।

२२९. यञ्चे विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।
अच्छिद्दवुत्तिं मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं ॥ ९ ॥
२३०. नेक्खं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति ।
देवापि नं पसंसन्ति ब्रह्मुनापि पसंसितो ॥ १० ॥
(यश्चेद् विज्ञाः प्रशंसन्ति अनुविच्य श्वः श्वः ।
अच्छिद्रवृत्तिं मेधाविनं प्रज्ञाशीलसमाहितम् ॥९॥
निष्कं जम्बूनदस्येव कस्तं निन्दितुमर्हति ।
देवा अपि तं प्रशंसन्ति ब्रह्मणाऽपि प्रशंसितः ॥१०॥)

विज्ञ लोग जानकर जिस निर्दोष आचरण वाले मेधावी, प्रज्ञा और शील से युक्त पुरुष की दिन-प्रतिदिन प्रशंसा करते हैं, उसकी जाम्बूनदसुवर्ण की अशर्फी के समान कौन निन्दा कर सकता है ? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं और ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है ।

वेणवन छब्बग्गिय भिक्षु

२३१. कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया ।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ॥ ११ ॥
(कायप्रकोपं रक्षेत् कायेन संवृतः स्यात् ।
कायदुश्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरेत् ॥११॥)

कायिक दुराचरण से बचे, काय से संयत रहे । कायिक दुराचार को छोड़, कायिक सदाचार का आचरण करे ।

२३२. वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया।
वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे॥ १२॥
(वचः प्रकोपं रक्षेद् वाचा संवृतः स्यात्।
वचो दुश्चरितं हित्वा वाचा सुचरितं चरेत्॥१२॥)

वाणी के दुराचार से बचे, वाणी से संयत रहे। वाणी के दुराचार को छोड़, वाणी के सदाचार का आचरण करे।

२३३. मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे॥ १३॥
(मनः प्रकोपं रक्षेत् मनसा संवृतः स्यात्।
मनोदुश्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरेत्॥१३॥)

मानसिक दुराचार से बचे, मन से संयत रहे। मानसिक दुराचार को छोड़, मानसिक सदाचार का आचरण करे।

२३४. कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता॥ १४॥
(कायेन संवृता धीरा अथ वाचा संवृताः।
मनसा संवृता धीराः ते वै सुपरिसंवृता॥१४॥)

जो धीर पुरुष काय से संयत, वाणी से संयत और मन से संयत रहते हैं, वे ही पूर्ण रूप से संयत हैं।

●

१८. मलवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) गोघातक-पुत्र

२३५. पण्डुपलासो'व दानिसि यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥ १ ॥
२३६. सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि ॥ २ ॥

(पाण्डुलपलासमिवेदानीमसि यमपुरुषा अपि च त्वां उपस्थिताः।
उद्योगमुखे च तिष्ठसि पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥१॥
स कुरु द्वीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायच्छस्व पण्डितो भव।
निर्धूतमलोऽनंगणो द्विव्यां आर्यंभूमिं एष्यसि ॥२॥)

तू इस समय पीले पत्ते के समान है, यमदूत तेरे पास आ खड़े हैं, तू प्रयाण के लिए तैयार है और तेरे पास पाथेय कुछ नहीं है। सो तू अपने लिए द्वीप (=रक्षा-स्थान) बना, उद्योग कर, पंडित बन, मल धो डाल, दोष-रहित बन, आर्यों के दिव्य पद को पायेगा।

२३७. उपनीतवयो च दानिसि सम्पयातोसि यमस्स सन्तिकं।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा पाथेय्यम्पि च ते नविज्जति ॥३॥
२३८. सो करोहि दीपमत्तनो खिप्प वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥४।

(उपनीतवया इदानीमसि सम्प्रयातोऽसि यमस्याऽन्तिके।
वासोऽपि च ते नाऽस्ति अन्तरा पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥३॥
स कुरु द्वीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायच्छस्व पण्डितो भव।
निर्धूतमलोऽनंगणो न पुनर्जातिजरे उपेष्यसि ॥४॥)

तेरी आयु समाप्त हो गई, यम के पास पहुँच चुका, तेरा निवास-स्थान भी नहीं है, (यात्रा के) मध्य के लिए तेरे पास पाथेय भी नहीं। सो तू

अपने लिए द्वीप बना, उद्योग कर, पण्डित बन, मल धो डाल, दोष-रहित बन; आर्यों के दिव्य पद को पायेगा।

जेतवन   कोई ब्राह्मण

२३९. अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥ ५ ॥
(अनुपूर्व्वेण मेधावी स्तोकं स्तोकं क्षणे क्षणे।
कर्मारो रजतस्येव निर्धमेत् मलमात्मनः ॥५॥)

सोनार जैसे चाँदी के मैल को क्रमशः क्षण-क्षण थोड़ा-थोड़ा जलाकर साफ करता है, वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे।

जेतवन   तिस्स (थेर)

२४०. अयसा'व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं सककम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥ ६ ॥
(अयस इव मलं समुत्थितं त (स्मा) द् उत्थाय तदेव खादति।
एवं अतिधावनचारिणं स्वानि कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ॥६॥)

जैसे लोहे का मुरचा उत्पन्न होकर उसी को खाता है, वैसे ही सदाचार का उल्लंघन करने वाले मनुष्य के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को प्राप्त कराते हैं।

जेतवन   लाल उदायी (थेर)

२४१. असज्झायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं ॥ ७ ॥
(अस्वाध्यायमला मंत्रा अनुत्थानमला गृहाः।
मलं वर्णस्य कौसीद्यं, प्रमादो रक्षतो मलम् ॥७॥)

पाठ न करना मन्त्रों का मैल है, मरम्मत न करना घर का मैल है, आलस्य सौन्दर्य का मैल है, असावधानी पहरेदार का मैल है।

राजगृह (वेणुवन)   कोई कुलपुत्र

२४२. मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च ॥ ८ ॥
(मलं स्त्रिया दुश्चरितं मात्सर्यं ददतो मलम्।
मलं वै पापका धर्मा अस्मिन् लोके परत्र च ॥८॥)

स्त्री का मल दुराचार है, दानी का मैल कंजूसी है। पाप इस लोक और परलोक दोनों के मैल हैं।

२४३. ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो ॥ ९ ॥
(ततो मलं मलतरं अविद्या परमं मलम्।
एतत् मलं प्रहाय निर्मला भवत भिक्षवः ॥९॥)

उससे भी बढ़कर अविद्या परम मल है। भिक्षुओ! इस मल को छोड़कर निर्मल बनो।

जेतवन (थुल्ल) सारी

२४४. सुजीवं अहिरिकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं ॥ १० ॥
(सुजीवितं अह्रीकेण काकशूरेण ध्वंसिना।
प्रस्कन्दिना प्रगल्भेन संक्लिष्टेन जीवितम् ॥१०॥)

निर्लज्ज, कौवे जैसा (स्वार्थ में) शूर, दूसरे का अहित करने वाले, पतित, बकवादी, पापी मनुष्य का जीवन सुखपूर्वक बीतता (देखा जाता) है।

२४५. हिरिमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेन ऽप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता ॥ ११ ॥
(ह्रीमता च दुर्जीवितं नित्यं शुचिगवेषिणा।
अलीनेनाऽप्रगल्भेन शुद्धाजीवेन पश्यता ॥११॥)

लज्जावान्; नित्य ही पवित्रता का ख्याल रखने वाले, सचेत, मितभाषी, शुद्ध जीविका वाले और ज्ञानी का जीवन कठिनाई से बीतता (देखा जाता) है।

जेतवन पाँच सौ उपासक

२४६. यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ॥ १२ ॥
२४७. सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥ १३ ॥

(यः प्राणमतिघातयति मृषावादं च भाषते ।
लोकेऽदत्तं आदत्ते परादारांँश्च गच्छति ॥१२॥
सुरामैरेयपानं च यो नरोऽनुयुनक्ति ।
इहैवमेष लोके मूलं खनत्यात्मनः ॥१३॥)

जो जीवहिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, पर-स्त्रीगमन करता है, शराब-दारू पीता है, वह इस संसार में अपनी ही जड़ खोदता है ।

२४८. एवं भो पुरिस ! जानाहि पापधम्मा असञ्ञता ।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥ १४ ॥
(एवं भो पुरुष ! जानीहि पापधर्माणोऽसंयतान् ।
मा त्वां लोभोऽधर्मश्च चिरं दुखाय रंधेरन् ॥१४॥)

हे पुरुष ! संयम रहित पाप कर्म ऐसे ही होते हैं, इसे जानो । तुम्हें लोभ और अधर्म चिरकाल तक दुःख में न डाले रहें ।

जेतवन तिस्स (बालक)

२४९. ददाति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो ।
तत्थ यो मङ्कु भवति परेसं पानभोजने ।
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥ १५ ॥
(ददाति वै यथाश्रद्धं यथाप्रसादनं जनः ।
तत्र यो मूको भवति परेषां पानभोजने ।
न स दिवा वा रात्रौ वा समाधिमधिगच्छति ॥१५॥)

लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार दान देते हैं । दूसरों के खाने-पीने को देख जो सह नहीं सकता, वह दिन या रात कभी भी एकाग्रता को नहीं प्राप्त करता ।

२५०. यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥ १६ ॥
(यस्य तत् समुच्छिन्नं मूलाघातं समुद्धतम् ।
स वै दिवा रात्रौ वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥)

जिसकी ऐसी मनोवृत्ति उच्छिन्न हो गई है, समूल नष्ट हो गई है, वही रात-दिन (सर्वदा) एकाग्रता को प्राप्त करता है ।

जेतवन पाँच उपासक

२५१. नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥ १७ ॥
(नास्ति रागसमोऽग्निः नास्ति द्वेषसमो ग्राहः।
नाऽस्ति मोहसमं जालं, नाऽस्ति तृष्णा समा नदी ॥१७॥)

राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह (=भूत) नहीं; मोह के समान जाल नहीं, तृष्णा के समान नदी नहीं।

भद्दियनगर (जातियावन) मेण्डक (श्रेष्ठी)

२५२. सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं।
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो ॥ १८ ॥
(सुदर्शं वद्यमन्येषां आत्मनः पुनर्दुर्दशम्।
परेषां हि स वद्यानि अवपुनाति यथातुषम्।
आत्मनः पुनः छादयति कलिमिव कितवान् शठः ॥१८॥)

दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष) देखना कठिन है। वह (पुरुष) दूसरों के ही दोषों को भूसे की भाँति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने (दोषों) को वैसे ही ढाँकता है, जैसे बहेलिया शाखाओं से अपने शरीर को।

जेतवन उज्झानसञ्ञी (थेर)

२५३. परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया ॥ १९ ॥
(परवद्याऽनुदर्शिनो नित्यं उद्ध्यानसंज्ञिनः।
आस्रवास्तस्य बर्द्धन्ते आराद् स आस्रवक्षयात् ॥१९॥)

दूसरों के दोष देखनेवाले तथा सदा दूसरों से चिढ़नेवाले के आश्रव (=चित्तमल) बढ़ते हैं। वह आश्रवों के विनाश से दूर हटा हुआ है।

कुशीनगर (शालवन उपवत्तन) सुभद्द (परिव्राजक)

२५४. आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥ २० ॥

(आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः ।
प्रपंचाऽभिरताः प्रजा निष्प्रपंचास्तथागताः ॥ २० ॥)

आकाश में पद (चिह्न) नहीं, बाहर में श्रमण नहीं[1], लोग प्रपंच में लगे रहते हैं, किन्तु तथागत प्रपंच रहित हैं ।

२५५ आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।
सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥ २१ ॥

(आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः ।
संस्काराः शाश्वता न सन्ति, नाऽस्ति बुद्धानामिङ्गितम् ॥ २१ ॥)

आकाश में पद (चिह्न) नहीं, बाहर में श्रमण नहीं, संस्कार शाश्वत नहीं और बुद्धों में चंचलता नहीं ।

◆

---

[1] इसका भावार्थ यह है—'बुद्ध शासन से बाहर दूसरे धर्मों में कोई मार्ग-फल प्राप्त श्रमण नहीं है ।'

१९. धम्मट्ठवग्गो

श्रावस्ती (जेतवन) विनिच्चयमहामच(=जज)

२५६. न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थ सहसा नये।
यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥ १ ॥
२५७. असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥ २ ॥
(न तेन भवति धर्मस्थो येनार्थं सहसा नयेत्।
यश्चाऽर्थं अनर्थं च उभौ निश्चिनुयात् पंडितः ॥ १ ॥
असाहसेन धर्मेण समेन नयते परान्।
धर्मेण गुप्तो मेधावी धर्मस्थ इत्युच्यते ॥ २ ॥)

विना विचारे यदि कोई न्याय करता है, तो वह न्यायाधीश नहीं। जो पण्डित सच्चे और झूठे दोनों का निर्णय कर विचारपूर्वक धर्म से पक्षपात रहित होकर न्याय करता है, वही धर्म की रक्षा करने वाला सच्चा न्यायाधीश कहा जाता है।

जेतवन छब्बग्गिय (भिक्षु)

२५८. न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥ ३ ॥
(न तावता पण्डितो भवति यावता बहुभाषते।
क्षेमी ऽवैरी अभयः पण्डित इत्युच्यते ॥ ३ ॥)

बहुत बोलने से (कोई) पण्डित नहीं होता, प्रत्युत जो क्षेमवान्, अ-वैरी और निर्भय होता है, वही पण्डित कहा जाता है।

जेतवन एकूदान (थेर)

२५९. न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति ॥
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥ ४ ॥

(न तावता धर्मधरो यावता बहु भाषते।
यश्चाल्पमपि श्रुत्वा धर्मं कायेन पश्यति ।
स वै धर्मधरो भवति यो धर्मं न प्रमाद्यति ।। ४ ।।)

बहुत बोलने से (कोई) धर्मधर नहीं होता, प्रत्युत जो थोड़ा भी सुनकर धर्म का (नाम-) काय से साक्षात् करता है, और जो धर्म में प्रमाद नहीं करता वही धर्मधर है ।

जेतवन लकुण्टक भद्दिय (थेर)

२६०. न तेन थेरो होति येनस्स पलितं सिरो ।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'ति वुच्चति ।। ५ ।।
(न तेन स्थविरो भवति येनाऽस्य पलितं शिरः ।
परिपक्वं वयस्तस्य मोघजीर्ण इत्युच्यते ।। ५ ।।)

सिर के (बाल के) पकने से (कोई) स्थविर नहीं होता, केवल उसकी आयु परिपक्व हो गई है, वह तो तुच्छ वृद्ध कहा जाता है ।

२६१. यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो ।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो'ति पवुच्चति ।। ६ ।।
(यस्मिन् सत्यं च धर्मश्चाहिंसा संयमो दमः ।
स वै वान्तमलो धीरः स्थविर इत्युच्यते ।। ६ ।।)

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगतमल, धीर स्थविर कहा जाता है ।

जेतवन बहुत से भिक्षु

२६२. न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा ।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ।। ७ ।।
(न वाक्करणमात्रेण वर्णपुष्कलतया वा ।
साधुरूपो नरो भवति ईर्षुको मत्सरी शठः ।। ७ ।।)

ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ पुरुष वक्ता या रूपवान् होने मात्र से साधु-रूप नहीं होता ।

२६३. यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपोति वुच्चति ।। ८ ।।

(यस्य चैतत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्धतम् ।
स वान्तदोषो मेधावी साधुरूप इत्युच्यते ॥ ८ ॥)

जिसका यह बिल्कुल जड़ से उच्छिन्न हो गया है, समूल नष्ट हो गया है, वही द्वेष रहित मेधावी साधु-रूप कहा जाता है ।

जेतवन हत्थक (भिक्षु)

२६४. न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं ।
इच्छालाभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥ ९ ॥
(न मुण्डकेन श्रमणोऽव्रतोऽलीकं भणम् ।
इच्छालाभसमापन्नः श्रमणः किं भविष्यति ॥ ९ ॥)

जो व्रतरहित, मिथ्याभाषी है, वह पण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता, इच्छा-लाभ से भरा (पुरुष) क्या श्रमण होगा ?

२६५. यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो ।
समितत्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥ १० ॥
(यश्च शमयति पापानि अणूनि स्थूलानि सर्वशः ।
शमितत्त्वाद्धि पापानां श्रमण इत्युच्यते ॥ १० ॥)

जो छोटे-बड़े पापों को सर्वथा शमन करनेवाला है, पाप को शमित होने के कारण वह श्रमण कहा जाता है ।

जेतवन कोई ब्राह्मण

२६६. न तेन भिक्खु होति यावता भिक्खते परे ।
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता ॥ ११ ॥
(न तावता भिक्षुः (स) भवति यावता भिक्षते परान् ।
विश्वं धर्मं समादाय भिक्षुर्भवति न तावता ॥ ११ ॥)

दूसरों के पास जाकर भिक्षा माँगने से कोई भिक्षु नहीं होता है और न तो भिक्षु होता है विषम-धर्म को ग्रहण करने से ।

२६७. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरिय वा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥ १२ ॥
(य इह पुण्यं च पापं च वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।
संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ॥ १२ ॥)

जो यहाँ पुण्य और पाप को छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञान के साथ लोक में विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है।

जेतवन तीर्थिक

२६८. न मोनेन मुनी होति मूळ्हरूपो अविद्दसु।
यो च तुलं' व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥ १३ ॥
२६९. पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनी।
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥ १४ ॥
(न मौनेन मुनिर्भवति मूढरूपोऽविद्वान्।
यश्च तुलामिव प्रगृह्य वरमादाय पंडितः ॥ १३ ॥)
पापानि परिवर्जति स मुनिस्तेन स मुनिः।
यो मनुत उभौ लोकौ मुनिस्तेन प्रोच्यते ॥ १४ ॥)

मौन धारण करने मात्र से कोई अविद्वान् मूढ़ मुनि नहीं होता। जो पण्डित–मानो श्रेष्ठ तुला ग्रहण करके दोनों लोकों का मान करता है (=तौलता है) और पापों को छोड़ देता है, वह इस कारण मुनि है और मुनि कहा जाता है।

जेतवन आर्य (कटिया लगाने वाला)

२७०. न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ॥ १५ ॥
(न तेनाऽऽर्यो भवति येन प्राणान् हिनस्ति।
अहिंसया सर्वप्राणानां आर्य इति प्रोच्यते ॥ १५ ॥)

प्राणियों की हिंसा करने से (कोई) आर्यं नहीं होता, सभी प्राणियों की हिसा न करने से आर्य कहा जाता है।

जेतवन बहुत से शील आदि-युक्त भिक्षु

२७१. न सीलब्बतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पन।
अथवा समाधि लाभेन विवित्तसयनेन वा ॥ १६ ॥
२७२. फुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं।
भिक्खु ! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ॥ १७ ॥
(न शीलव्रतमात्रेण बाहुश्रुत्येन वा पुनः।
अथवा समाधिलाभेन विविच्य शयनेन वा ॥१६॥)

(स्पृशामि नैष्कर्म्यसुखं अपृथग्जनसेवितम् ।
भिक्षो विश्वासं मा पादीः अप्राप्त आस्रवक्षम् ।।१७।।)

न शील और व्रत के आचरण मात्र से न बहुश्रुत होने से, न समाधि-लाभ से या न एकान्त में शयन करने सें, अथवा न पृथक् जनों द्वारा अप्राप्त नैष्कर्म्य (=अनागामी) के सुख का अनुभव कर रहा हूं–सोचने मात्र से दुःख थोड़ा होता है। भिक्षु ! तब तक विश्वास न करो जब तक आश्रवों का क्षय न हो जाय।

●

२०. मग्गवग्गो

जेतवन पाँच सौ भिक्षु

२७३. मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥ १ ॥
(मार्गाणामष्टांगिकः श्रेष्ठः सत्यानां चत्वारि पदानि।
विरागः श्रेष्ठो धर्माणां द्विपदानां च चक्षुष्मान् ॥१॥)

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यों में चार-पद (=चार आर्य सत्य) श्रेष्ठ हैं, धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपदों (=मनुष्यों) में चक्षुष्मान् (=ज्ञान-नेत्रधारी बुद्ध) श्रेष्ठ हैं।

२७४. एसोव मग्गो नत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥ २ ॥
(एष वो मार्गो नाऽस्त्यन्यो दर्शनस्य विशुद्धये।
एवं हि यूयं प्रतिपद्यध्वं मारस्यैष प्रमोहनः ॥२॥)

दर्शन (=ज्ञान) की विशुद्धि के लिए यही मार्ग है, दूसरा नहीं; इसी पर तुम आरूढ़ होओ, यही मार को मूर्छित करने वाला है।

२७५. एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥ ३ ॥
(एतं हि यूयं प्रतिपन्ना दुःखस्यान्तं करिष्यथ।
आख्यातो वै मया मार्ग आज्ञाय शल्य-संस्थानम् ॥३॥)

इस मार्ग पर आरूढ़ हो तुम दुःखों का अन्त कर दो। शल्य-समान दुःख का निवारण-स्वरूप निर्वाण को जान मैंने इसका उपदेश किया है।

२७६. तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥ ४ ॥
(युष्माभिः कार्यं आतप्यं आख्यातारस्तथागताः।
प्रतिपन्ना प्रमोक्ष्यन्ते ध्यायिनो मारबन्धनात् ॥ ४ ॥)

कार्य के लिए तुम्हें ही उद्योग करना है, तथागतों (=बुद्धों) का कार्य उपदेश कर देना है। (तदनुसार) मार्ग पर आरूढ़ हो ध्यान में रत मार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

जेतवन पाँच सौ भिक्षु

२७७. सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥ ५॥
(सर्वे संस्कारा अनित्या इति यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्धये॥ ५॥)

'सभी संस्कार अनित्य हैं'–ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद (=विराग) को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि (=निर्वाण) का मार्ग है।

२७८. सब्बे सङ्खारा दुक्खा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥ ६॥
(सर्वे संस्कारा दुःखा इति यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्धये॥ ६॥)

'सभी संस्कार दुःख हैं'—ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

२७९. सब्बे धम्मा अनत्ता'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥ ७॥
(सर्वे धर्मा अनात्मान इति यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि एष मार्गो विशुद्धये॥ ७॥)

'सभी धर्म (=पञ्चस्कन्ध) अनात्म हैं'—ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

जेतवन (योगी) तिस्स (थेर)

२८०. उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो युवा बली आलसियं उपेतो।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति॥८॥
(उत्थानकालेऽनुत्तिष्ठन् युवा बली आलस्यमुपेतः।
संसन्न-संकल्प-मनाः कुसीदः प्रज्ञया मार्गं अलसो न विन्दति॥ ८॥)

जो उद्योग करने के समय उद्योग न करने वाला, युवा और बली होकर भी आलस्य से युक्त होता है, जिसने उच्च आकांक्षाओं को छोड़ दिया है और जो कुसीदी (=दीर्घसूत्री==आलसी) है, वह आलसी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं प्राप्त करता ।

राजगृह (वेणुवन) शूकर प्रेत

२८१. वाचानुरक्खो मनसा सुसंवुतो कायेन च अकुसलं न कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ।।९।।

(वाचाऽनुरक्षी मनसा सुसंस्कृतः कायेन चाऽकुशलं न कुर्यात् ।
एतान् त्रीन् कर्मपथान् विशोधयेत्, आराधयेत् मार्गं ऋषिप्रवेदितम् ।। ९ ।।)

वाणी का संयम करे, मन का संयम करे और शरीर से कोई पाप न करे। इन तीनों कर्म-पथों को शुद्ध करे। बुद्ध (==ऋषि) के बताये मार्ग का अनुसरण करे।

जेतवन पोठिल (थेर)

२८२. योगा वे जायती भूरि अयोगा भूरिसङ्खयो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा भवाय विभवाय च।
तथत्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति।। १० ।।

(योगाद् वै जायते भूरि अयोगाद् भूरिसंक्षयः ।
एतं द्वेधापथं ज्ञात्वा भवाय विभवाय च।
तथाऽऽत्मानं निवेशयेद् यथा भूरि प्रवर्धते ।। १० ।।)

योगाभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होती है, और उसके अभाव से प्रज्ञा का क्षय होता है। उन्नति और विनाश के इन दो भिन्न मार्गों को जान अपने को ऐसा लगावे, जिससे प्रज्ञा की वृद्धि हो।

जेतवन बहुत से वृद्ध भिक्षु

२८३ वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायती भयं।
छेत्वा वनञ्च वनथञ्च निब्बना होथ भिक्खवो ।। ११ ।।

(वनं छिन्धि मा वृक्षं वनतो जायते भयम्।
छित्वा वनं च वनथं च निर्वाणा भवत भिक्षवः ।। ११ ।।)

भिक्षुओ ! वन (=आसक्ति) को काटो, वृक्ष (=शरीर) को नहीं, वन से भय उत्पन्न होता है। वन और झाड़ (==कामना) को काट कर वनरहित हो जाओ।

२८४. यावं हि वनथो न छिज्जति अणुमत्तोपि नरस्स नारिसु ।
पटिबद्धमनो नु ताव सो वच्छो खीरपको'व मातरि ॥१२॥
(यावद्धि वनथो न छिद्यतेऽणुमात्रोऽपि नरस्य नारीषु ।
प्रतिबद्धमनाः नु तावत् स वत्सः क्षीरप इव मातरि ॥ १२ ॥)

जब तक अणुमात्र भी स्त्रियों में पुरुष की कामना नहीं खण्डित रहती है, तब तक दूध पीनेवाला बछड़ा जसे माता में आबद्ध रहता है, वैसे ही वह पुरुष बँधा रहता है।

जेतवन स्वर्णकार (थेर)

२८५. उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं'व पाणिना ।
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बानं सुगतेन देसितं ॥१३॥
(उच्छिन्धि स्नेहमात्मनः कुमुदं शारदिकमिव पाणिना ।
शान्तिमार्गमेव बृंहय निर्वाणं सुगतेन देशितम् ॥ १३ ॥)

हाथ से शरद् (ऋतु) के कुमुद की भाँति, आत्म-स्नेह को उच्छिन्न कर डालो, सुगत (=बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट (इस) शान्ति-मार्ग निर्वाण का आश्रय लो।

जेतवन महाधनी वणिक्

२८६. इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हसु ।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥ १४ ॥
(इह वर्षासु वसिष्यामि इह हेमन्तग्रीष्मयोः ।
इति बालो विचिन्तयति, अन्तरायं न बुध्यते ॥ १४ ॥)

यहाँ वर्षा में बसूँगा, यहाँ हेमन्त और ग्रीष्म में,— मूर्ख इस प्रकार सोचता है किन्तु (अपने जीवन के) विघ्न को नहीं बूझता है।

जेतवन किसा गोतमी (थेरी)

२८७. तं पुत्तपसुसम्मत्तं ब्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ॥ १५ ॥
(तं पुत्र-पशु-सम्मतं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं ग्रामं महौघ इव मृत्युरादाय गच्छति ॥ १५ ॥)

सोये गाँव को जैसे बड़ी बाढ़ बहा ले जाय; वैसे ही पुत्र और पशु में लिप्त आसक्त पुरुष को मौत ले जाती है।

जेतवन पटाचारा (थेर)

२८८. न सन्ति पुत्ता ताणाय पिता नापि बन्धवा।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता ॥ १६ ॥
(न सन्ति पुत्रास्त्राणाय न पिता नाऽपि बान्धवाः।
अन्तकेनाऽधिपन्नस्य नाऽस्ति ज्ञातिषु त्राणता ॥ १६ ॥)

पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता, न बन्धु लोग ही। जब मृत्यु आती है, तो जातिवाले रक्षक नहीं हो सकते।

२८९. एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बानगमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये ॥ १७ ॥
(एतमर्थवशं ज्ञात्वा पंडितः शीलसंवृतः।
निर्वाणगमनं मार्गं क्षिप्रमेव विशोधयेत् ॥ १७ ॥)

इस बात को जानकर पण्डित पुरुष शीलवान् हो निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे।

●

२१. पकिण्णकवग्गो

राजगृह (वेणुवन) गङ्गावरोहण

२९०. मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं ।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं ॥ १ ॥
(मात्रासुखपरित्यागात् पश्येच्चेद् विपुलं सुखम् ।
त्यजेन्मात्रासुखं धीरः संपश्यन् विपुलं सुखम् ॥ १ ॥)

थोड़े सुख के परित्याग से यदि अधिक सुख-प्राप्ति की सम्भावना देखे, तो बुद्धिमान् पुरुष अधिक सुख के ख्याल से अल्प सुख का त्याग कर दे ।

जेतवन मुर्गी के अण्डे खानेवाली स्त्री

२९१. परदुक्खूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न परिमुच्चति ॥ २ ॥
(परदुःखोपादानेन य आत्मनः सुखमिच्छति ।
वैरसंसर्गसंसृष्टो वैरात् स न प्रमुच्यते ॥ २ ॥)

दूसरे को दुःख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है वह वैर के संसर्ग में पड़ा (व्यक्ति) वैर से नहीं छूटता ।

भद्दियनगर (जातियावन) भद्दिय (भिक्षु)

२९२. यं हि किच्चं तदपविद्धं अकिच्चं पन कयिरति ।
उन्नलानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥ ३ ॥
(यद्धि कृत्यं तद् अपविद्धं, अकृतं पुनः कुर्युः ।
उन्मलानां प्रमत्तानां तेषां वर्द्धन्त आस्रवाः ॥ ३ ॥)

जो कर्त्तव्य है उसे छोड़ता है, किन्तु जो अकर्त्तव्य है उसे करता है । ऐसे बढ़े मलवाले प्रमादियों के आश्रव बढ़ते हैं ।

२९३. येसञ्च सुसमारद्धा निच्चं कायगतासति ।
अकिच्चन्ते न सेवन्ति किच्चे सातच्चकारिनो ।
सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ४ ॥

(येषाञ्च सुसमारब्धा नित्यं कायगता स्मृतिः ।
अकृत्यं ते न सेवन्ते कृत्ये सातत्यकारिणः ।
स्मरतां सम्प्रजानानां अस्तं गच्छन्त्यास्रवाः ॥ ४ ॥)

जिन्हें नित्य कायगता-स्मृति उपस्थित रहती है, वे अकर्त्तव्य को नहीं करते और कर्त्तव्य को निरन्तर करने वाले होते हैं। (उन) स्मृति और सम्प्रजन्य से युक्त (पुरुषों) के आश्रव अस्त हो जाते हैं।

जेतवन लकुण्टक भद्दिय (थेर)

२९४. मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ५ ॥
(मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च क्षत्रियौ।
राष्ट्रं सऽनुचरं हत्वाऽनघो याति ब्राह्मणः ॥ ५ ॥)

माता (=तृष्णा), पिता (=अहंकार), दो क्षत्रिय राजाओं (=शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि) और अनुचर के साथ सारे राष्ट्र (=संसार की सारी आसक्तियाँ) को मारकर ब्राह्मण (=क्षीणाश्रव) दुःख-रहित हो जाता है।

२९५. मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये।
वेय्यग्घपञ्चमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ६ ॥
(मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च श्रोत्रियौ।
व्याघ्रपंचमं हत्वाऽनघो याति ब्राह्मणः ॥ ६ ॥)

माता, पिता, दो श्रोत्रिय (=ब्राह्मण) राजाओं (=शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि) और पाँचवें व्याघ्र (=पाँच नीवरण) को मारकर ब्राह्मण दुःख-रहित होता है।

राजगृह (वेणुवन) दारुसाकटिकपुत्त

२९६. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥ ७ ॥
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः।
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं बुद्धगता स्मृतिः ॥ ७ ॥)

जिन्हें दिन-रात नित्य बुद्धानुस्मृति बनी रहती हैं, वे गौतम (–बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

२९७. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥ ८ ॥
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावका:।
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं धर्मगता स्मृति: ॥ ८ ॥)

जिन्हें दिन-रात नित्य धर्मानुस्मृति बनी रहती हैं, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

२९८. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं संघगता सति ॥ ९ ॥
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावका:।
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं संघगता स्मृति: ॥ ९ ॥)

जिन्हें दिन-रात नित्य संघानुस्मृति बनी रहती है, वे गौतम (–बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

२९९. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥ १० ॥
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावका:।
येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं कायगता स्मृति: ॥ १० ॥)

जिन्हें दिन-रात नित्य कायगता-स्मृति बनी रहती है, वे गौतम (–बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

३००. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥ ११ ॥
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौनमश्रावका:।
येषां दिवा च रात्रौ च अहिंसायां रतं मन: ॥ ११ ॥)

जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है, वे गौतम (–बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

३०१. सुप्पबद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥ १२ ॥
(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावका:।

येषां दिवा च रात्रौ च भावनायां रतं मनः ॥ १२ ॥)

जिनका मन दिन-रात नित्य भावना में रत रहता है, वे गौतम (—बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

वैशाली (महावन)   वज्जिपुत्तक (भिक्षु)

३०२. दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुखा ।
दुक्खो 'समानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगू ।
तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥१३॥
(दुष्प्रव्रज्यां दुरभिरामं दुरावासं गृहं दुःखम् ।
दुःखोऽसमानसंवासो दुःखाऽनुपतितोऽध्वगः ।
तस्मान्नचाऽध्वगः स्यान्न च दुःखाऽनुपतितः स्यात् ॥ १३ ॥)

कष्टपूर्ण प्रव्रज्या में रत होना दुष्कर है, न रहने योग्य घर दुःखद है, न अनुकूल मनुष्य के साथ निवास करना दुःखद है, (संसार रूपी-) मार्ग का पथिक न बने, न दुःख में पड़े।

जेतवन   चित्त (गृहपति)

३०३. सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥
(श्रद्धः शीलेन सम्पन्नो यशोभोगसमर्पितः ।
यं यं प्रदेशं भजते तत्र तत्रैव पूजितः ॥ १४ ॥)

श्रद्धावान्, शीलवान्, यश और भोग से युक्त (पुरुष) जिस-जिस स्थान में जाता है, वहीं पूजित होता है।

जेतवन   (चूल) सुभद्रा

३०४. दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो'व पब्बतो ।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्ति खित्ता यथा सरा ॥ १५ ॥
(दूरे सन्तः प्रकाशन्ते हिमवन्त इव पर्वताः ।
असन्तोऽत्र न दृश्यन्ते रात्रिक्षिप्ता यथा शराः ॥ १५ ॥)

सत्पुरुष दूर होने पर भी हिमालय पर्वत की भाँति प्रकाशते हैं और असत्पुरुष पास में भी होने पर रात में फेंके बाण की भाँति नहीं दिखलाई देते।

जेतवन — अकेले विहरने वाले (थेर)

३०५. एकासनं एकसेय्यं एको चरमतन्दितो ।
एको दमय अत्तानं वनन्ते रमतो सिया ॥ १६ ॥

(एकासन एकशय्य एकश्चरन्नतन्द्रितः ।
एको दमयन्नात्मानं वनान्ते रतः स्यात् ॥ १६ ॥)

एक ही आसन रखने वाला, एक शय्या रखने वाला, अकेला विचरने वाला बनकर, आलस्य रहित हो,अपने को दमन कर अकेला ही वनान्त में रमण करे ।

२२. निरयवग्गो

जेतवन सुन्दरी (परिव्राजिका)

३०६. अभूतवादी निरयं उपेति यो चापि कत्वा 'न करोमीति' चाह ।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥१॥
(अभूतवादी निरयमुपैति यो चाऽपि कृत्वा 'न करोमी' ति चाह ।
उभावपि तौ प्रेत्य समा भवतो निहीनकर्माणौ मनुजौ परत्र ॥ १ ॥)

असत्यवादी नरक में जाता है और वह भी जो कि करके 'नहीं किया'—कहता है । दोनों ही प्रकार के नीचकर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं ।

राजगृह (वेणुवन) पाप फलानुभवी प्राणी

३०७. कासावकंठा बहवो पापधम्मा असञ्ञता ।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उपपज्जरे ॥ २ ॥
(काषायकण्ठा बहवः पापधर्मा असंयताः ।
पापा पापैः कर्मभिर्निरयं त उत्पद्यन्ते ॥ २ ॥)

कंठ में काषाय वस्त्र डाले कितने ही पापी असंयमी हैं, जो कि पापी अपने पाप कर्मों से नरक में उत्पन्न होते हैं ।

वैशाली (महावन) वग्गुमुदातीरवासी भिक्षु

३०८. सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥ ३ ॥
(श्रेयान् अयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपमः ।
यच्चेद भुञ्जीत दुःशीलो राष्ट्रपिण्डं असंयतः ॥ ३ ।)

असंयमी दुराचारी हो, राष्ट्र का पिण्ड खाने से अग्निशिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है ।

जेतवन खेम (श्रेष्ठीपुत्री)

३०९. चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जती परदारूपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं निन्दं ततियं निरयं चतुत्थं ॥४॥

(चत्वारि स्थानानि नरः प्रमत्त आपद्यते परदारोपसेवी ।
अपुण्यलाभं न निकामशय्यां निन्दां तृतीयां निरयं चतुर्थम् ॥ ४ ॥)

प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ हैं—अपुण्य का लाभ, सुख से न निद्रा, तीसरे निन्दा और चौथे नरक ।

३१०. अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका
भीतस्स भीताय रती च थोकिका ।
राजा च दण्डं गरुकं पणेति
तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

(अपुण्यलाभश्च गतिश्च पापिका, भीतस्य भीतया रतिश्च स्तोकिका ।
राजा च दंडं गुरुकं प्रणयति तस्मात् नरो परदारान् न सेवेत ॥ ५ ॥)

(अथवा) अपुण्यलाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प रति और राजा का भारी दण्ड देना । इसलिये मनुष्य को परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिये ।

जेतवन आज्ञा न मानने वाला (भिक्षु)

३११. कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयाय उपकड्ढति ॥ ६ ॥

(कुशो यथा दुर्गृहीतो हस्तमेवाऽनुकृन्तति ।
श्रामण्यं दुष्परामृष्टं निरयायोपकर्षति ॥ ६ ॥)

जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश हाथ को ही छेदता है, (इसी प्रकार) श्रामण्य ठीक से न ग्रहण करने पर नरक में ले जाता है ।

३१२. यं किञ्चि सिथिलं कम्मं सङ्किलिट्ठं च यं वतं ।
संकस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥ ७ ॥

(यत् किंचित् शिथिलं कर्म संक्लिष्टं च यद् व्रतम् ।
संकुच्छ्रं ब्रह्मचर्यं न तद् भवति महत्फलम् ॥ ७ ॥)

जो कर्म शिथिल है, जो व्रत मलयुक्त है और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है, वह महाफल (–दायक) नहीं होता है ।

३१३. कयिरा चे कयिराथेनं दळ्हमेनं परक्कमे ।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

(कुर्याच्चेत् कुर्वीतैतद् दृढमेतत् पराक्रमेत ।
शिथिलो हि परिव्राजको भूय आकिरते रजः ॥ ८ ॥)

यदि (प्रव्रज्या कर्म) करना है तो उसे करे, उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ लग जावे, ढीला-ढाला श्रमण धर्म अधिक मल बिखेरता है ।

जेतवन　　　　कोई ईर्ष्यालु स्त्री

३१४. अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥ ९ ॥

(अकृतं दुष्कृतः श्रेयः पश्चात् तपति दुष्कृतम् ।
कृतं च सुकृतं श्रेयो यत् कृत्वा नाऽनुतप्यते ॥ ९ ॥)

दुष्कृत (=पाप) का न करना श्रेष्ठ है, दुष्कृत करने वाला पीछे अनुपात करता है । सुकृत का करना श्रेष्ठ है, जिसको करके (मनुष्य) अनुताप नहीं करता ।

जेतवन　　　　बहुत से आगन्तुक भिक्षु

३१५. नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं ।
एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा ।
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ॥ १० ॥

(नगरं यथा प्रत्यन्तं गुप्तं सान्तर्बाह्यम् ।
एवं गोपयेदात्मानं क्षणं वै मा उपातिगाः ।
क्षणाऽतीता हि सोचन्ति निरये समर्पिताः ॥ १० ॥)

जैसे सीमान्त का नगर भीतर-बाहर खूब रक्षित होता है, उसी प्रकार अपने को रक्षित रखे । क्षण भर भी न चूके, क्योंकि क्षण को चूके हुए लोग नरक में पड़कर शोक करते हैं ।

जेतवन　　　　जैनसाधु

३१६. अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ ११ ॥

(अलज्जिता ये लज्जन्ते लज्जिता ये न लज्जन्ते ।
मिथ्यादृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥ ११ ॥)

लज्जा न करने की बात में जो लज्जित होते हैं और लज्जा करने की बात में लज्जित नहीं होते—वे प्राणी मिथ्या-दृष्टि को ग्रहण करने से दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१७. अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छति दुग्गतिं ॥ १२ ॥
(अभये च भयदर्शिनो भये चाऽभयदर्शिनः।
मिथ्यादृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥ १२ ॥)

भय न करने की बात में भय देखते हैं और भय करने की बात में भय नहीं देखते—वे प्राणी मिथ्या-दृष्टि को ग्रहण करने से दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

जेतवन तीर्थिक-शिष्य

३१८. अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे च'वज्जदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ १३ ॥
(अवद्य वद्यमतयो वद्ये चाऽवद्यदर्शिनः।
मिथ्यादृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥ १३ ॥)

जो अदोष में दोषबुद्धि रखनेवाले हैं और दोष में अदोष-दृष्टि रखने वाले हैं, वे प्राणी मिथ्या-दृष्टि को ग्रहण करके दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१९. वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥ १४ ॥
(वद्यं च वद्यतो ज्ञात्वाऽवद्यं चावद्यतः ॥
सम्यग्दृष्टिसमादानाः सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥ १४ ॥)

दोष को दोष जानकर और अदोष को अदोष जानकर प्राणी सम्यक्-दृष्टि को धारण करके सुगति का प्राप्त होते हैं।

◆

२३. नागवग्गो

कोशाम्बी

आनन्द (थेर)

३२०. अहं नागोव सङ्गामे चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥ १ ॥
(अहं नाग इव संग्रामे चापतः पतितं शरम् ।
अतिवाक्यं तितिक्षिष्ये, दुःशीला हि बहुजनाः ॥ १ ॥)

जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं कटु-वाक्य को सहन करूँगा, क्योंकि दुःशील लोग ही अधिक हैं ।

३२१. दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति ।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु योतिवाक्यं तितिक्खति ॥ २ ॥
(दान्तं नयन्ति समितिं दान्तं राजाभिरोहति ।
दान्तः श्रेष्ठो मनुष्येषु योऽतिवाक्यं तितिक्षते ॥ २ ॥)

दान्त (=शिक्षित) (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, दान्त पर राजा चढ़ता है, मनुष्यों में भी दान्त (= अपना दमन किया हुआ) श्रेष्ठ है, जो (दूसरों के) कटु-वाक्यों को सहन करता है ।

३२२. वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा ।
कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥ ३ ॥
(वरमश्वतरा दान्ता आजानीयाश्च सिंधवः ।
कुंजराश्च महानागा आत्मदान्तस्ततो वरम् ॥ ३ ॥)

खच्चर, अच्छी जाति के घोड़े और महानाग हाथी दमन कर लिये जाने पर अच्छे होते हैं । जिसने अपने को दमन कर लिया है, वह उनसे भी अच्छा है ।

जेतवन

भूतपूर्व महावत भिक्षु

३२३. न हि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं दिसं ।
यथात्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥ ४ ॥

(नहि एतैर्यानैः गच्छेदगतां दिशम् ।
यथाऽऽत्मना सुदान्तेन दान्तो दान्तेन गच्छति ॥ ४ ॥)

इन यानों से कोई निर्वाण की ओर नहीं जा सकता । अपने को जिसने दमन कर लिया है, वही सुदान्त वहाँ पहुँच सकता है ।

श्रावस्ती ब्राह्मण-पुत्र

३२४. धनपालको नाम कुञ्जरो कटुकप्पभेदनो दुन्निवारियो ।
वद्धो कवलं न भुञ्जति सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥५॥
(धनपालको नाम कुंजरो कटकप्रभेदनो दुर्निवार्यः ।
बद्धः कवलं न भुंक्ते, स्मरति नागवनं कुंजरः ॥ ५ ॥)

सेना को तितर-बितर करने वाला, दुर्धर्ष धनपालक नामक हाथी; बन्धन में पड़ जाने पर कवल नहीं खाता, और (अपने) हाथियों के जंगल को स्मरण करता है ।

जेतवन प्रसेनजित् (कोसलराज)

३२५. मिद्धी यदा होति महग्घसो च
निद्दायिता सम्परिवत्तसायी ।
महावराहो’व निवापपुट्ठो
पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥ ६ ॥
(मृद्धो यदा भवति महाघसश्च निद्रायितः सपरिवर्तशायी ।
महावराह इव निवाप-पुष्टः पुनः पुनः गर्भमुपैति मन्दः ॥ ६ ॥)

आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोने वाला, खिला-पिला कर पुष्ट किये मोटे सूअर की तरह मन्द बार-बार गर्भ में पड़ता है ।

जेतवन सानु (सामणेर)

३२६. इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं
येनिच्छकं यत्थकाम यथासुखं ।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो ॥ ७ ॥

(इदं पुरा चित्तमचरत् चारिकां यथेच्छं यथाकामं यथासुखम् ।
तदद्याऽहं निग्रहीष्यामि योनिशो हस्तिनं प्रभिन्नमिवांकुशग्राहः ॥७॥)

पहले यह चित्त मनमाना जिधर चाहा उधर स्वच्छन्द जाता रहा, उसे आज से अच्छी तरह अपने वश में लाऊँगा—अंकुश ग्रहण करने वाला जैसे भड़के हाथी को ।

जेतवन

कोसलराजका बद्धेरक नामक हाथी

३२७ अप्पमादरता होथ स-चित्तमनुरक्खथ ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं पंके सत्तोव कुञ्जरो ॥ ८ ॥

(अप्रमादरता भवत स्वचित्तमनुरक्षत ।
दुर्गादुद्धरताऽऽत्मानं पंके सक्त इव कुंजरः ॥ ८ ॥)

अप्रमाद में रत होओ, अपने चित्त की रक्षा करो । पंक में फँसे हाथी की तरह इस कठिन संसार से अपना उद्धार करो ।

पारिलेय्यक

बहुत से भिक्षु

३२८. सचे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि
चरेय्यं तेनत्तमनो सतीमा ॥ ९ ॥

(स चेत् लभेत् निपक्वं सहायं सार्द्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।
अभिभूय सर्वान् परिश्रयान् चरेत् तेनाऽऽत्तमनाः स्मृतिमान् ॥ ९ ॥)

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पण्डित मिल जाये, तो सभी विघ्नों को दूर कर उसके साथ स्मृतिमान् और प्रसन्न होकर विहार करे ।

३२९. नो चे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।
राजाव रट्ठं विजितं पहाय
एको चरे मातङ्गरञ्ञेव नागो ॥ १० ॥

(न चेत् लभेत निपक्वं सहायं सार्द्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।
राजेव राष्ट्रं विजितं प्रहाय, एकश्चरेत् मातंगोऽरण्य इव नागः ॥१०॥)

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पण्डित मित्र न मिले तो राजा की भाँति पराजित राष्ट्र को छोड़—हस्तिराज के समान अकेला विचरण करे।

३३०. एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि बाले सहायता ।
एको चरे न च पापानि कयिरा ।
अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो ॥ ११ ॥

(एकस्य चरितं श्रेयो नास्ति बाले सहायता ।
एकश्चरेत् न च पापानि कुर्याद्
अल्पोत्सुको मातंगोऽरण्य इव नागः ॥ ११ ॥)

अकेला रहना उत्तम है। मूर्ख के साथ मित्रता अच्छी नहीं । अकेला विचरे, पाप न करे । हस्तिराज की तरह अनुत्सुक होकर रहे ।

हिमालय-प्रदेश (आरण्य कुटी) मार

३३१. अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया
तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन ।
पुञ्ञं सुखं जीवितसंखयम्हि
सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहाणं ॥ १२ ॥

(अर्थे जाते सुखाः सहायाः, तुष्टिः सुखा येतरेतरेण ।
पुण्यं सुखं जीवितसंक्षये सर्वस्य दुःखस्य सुखं प्रहाणम् ॥ १२ ॥)

काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर है । जो मिले उससे संतुष्ट रहना सुख है। मृत्यु के उपरान्त पुण्य सुख है। सभी दुःखों का प्रहाण सुख है।

३३२. सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा ।
सुखा सामञ्ञता लोके अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा ॥ १३ ॥

(सुखा मातृीयता लोकेऽथ पित्रीयता सुखा ।
सुखा श्रमणता लोकेऽथ ब्राह्मणता सुखा ॥ १३ ॥)

संसार में माता और पिता की सेवा सुखकर है। श्रमण-भाव (=संन्यास) सुखकर है और ब्राह्मणपन (=निष्पाप होना) सुखकर है।

३३३. सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता ।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥ १४ ॥

(सुखं यावद् जरां शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता ।
सुखः प्रज्ञायाः प्रतिलाभः पापानां अकरणं सुखम् ॥ १४ ॥)

वृद्धावस्था तक शील का पालन सुखकर है, स्थिर श्रद्धा का होना सुखकर है । ज्ञान का लाभ करना सुखकर है । पापों का न करना सुखकर है ।

⁂

२४. तण्हावग्गो

जेतवन　　　　　　　　　　　　　　　　　　कपिलमच्छ

३३४. मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवति हुराहुरं फलमिच्छं'व वनस्मि वानरो ॥१॥
(मनुजस्य प्रमत्तचारिणः तृष्णा वर्द्धते मालुवेव।
स प्लवतेऽहरहः फलमिच्छन् इव वने वानरः ॥ १ ॥)

प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भाँति बढ़ती हैं, वन में फल की इच्छा से कूद-फाँद करते बन्दर की तरह वह जन्मजन्मान्तर में भटकता रहता है।

३३५. यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवट्ठं'व वीरणं ॥ २ ॥
(यं एषा साहयति जन्मिनी तृष्णा लोके विषात्मिका।
शोकास्तस्य प्रवर्द्धन्तेऽभिवर्द्धमानं इव वीरणम् ॥ २ ॥)

यह विष रूपी नीच तृष्णा जिसे अपने वश में कर लेती है, उसके शोक वर्षाकाल में वीरण (=उशीर) की भाँति वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

३३६. यो चेतं सहती जम्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दू'व पोक्खरा ॥ ३ ॥
(यश्चैतां साहयति जन्मिनीं तृष्णां लोके दुरत्ययाम्।
शोकाः तस्मात् प्रपतन्त्युदबिन्दुरिव पुष्करात् ॥ ३ ॥)

जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जल के बिन्दु।

३३७. तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो'व वीरणं।
मा वो नलं'व सोतो' व मारो भञ्जि पुनप्पुनं ॥ ४ ॥

(तद् वो वदामि भद्रं वो यावन्त इह समागताः ।
तृष्णाया मूलं खनतोशीरार्थीव वीरणम् ॥ ४ ॥)

इसलिए मैं तुम्हें, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूँ---'जैसे उशीर के लिए लोग खस को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ खोदो । मत तुम्हें स्रोत में उत्पन्न नरकट की भाँति मार बार-बार तोड़े ।'

राजगृह (वेणुवन) गूथ-सूकर-पोतिक

३३८. यथापि मूले अनुपद्दवे दल्हे छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति ।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहत निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥५॥
(यथाऽपि मूलेऽनुपद्रवे दृढ़े छिन्नोऽपि वृक्षः पुनरेव रोहति ।
एवमपि तृष्णाऽनुशयेऽनिहते निर्वर्तते दुःखमिदं पुनः पुनः ॥ ५ ॥)

जैसे दृढ़मूल के बिल्कुल नष्ट न हो जाने से कटा हुआ वृक्ष फिर भी बढ़ जाता है, वैसे ही तृष्णा के समूल नष्ट न होने से यह दुःख बार-बार उत्पन्न होता रहता है ।

३३९. यस्स छत्तिंसति सोता मनापस्सवना भुसा ।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥ ६ ॥
(यस्य षट्त्रिंशत् स्रोतांसि मनापश्रवणानि भूयासुः ।
वाहा वहन्ति दुर्दृष्टिं संकल्पा रागनिःसृताः ॥ ६ ॥)

जिसके छत्तीस स्रोत संसार में प्रिय पदार्थों की ओर अत्यन्त प्रवाहित होते हैं, उसके रागपूर्ण संकल्प उसे दुर्दृष्टि की ओर बहा ले जाते हैं ।

३४०. सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति ।
तञ्च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ॥ ७ ॥
(स्रवन्ति स्रवतः स्रोतांसि लता उद्भिद्य तिष्ठति ।
तां च दृष्ट्वा लतां जातां, मूलं प्रज्ञया छिन्दत ॥ ७ ॥)

यह स्रोत सभी ओर बहते हैं । लता=(तृष्णा) फूटकर निकलती है । उस उत्पन्न हुई लता को देख, उसके मूल को प्रज्ञा से काट डालो ।

३४१. सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।
ते सोतसिता सुखेसिनो ते वे जातिजरूपगा नरा ॥८॥

(सरितः स्निग्धाश्च सौमनस्या भवन्ति जन्तोः ।
ते स्रोतः सुताः सुखैषिस्ते वै जातिजरोपगा नराः ॥ ८ ॥)

तृष्णा की धारायें प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं ! सुख के फेर में पड़े उसकी धारा में पड़ते हैं और बार-बार जन्म-जरा के चक्र में आते हैं ।

३४२. तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो' व बाधितो ।
सञ्ञोजनसंसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय ॥९॥

(तृष्णया पुरस्कृताः प्रजाः परिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।
संयोजनसंगसक्तका दुःखमुपयन्ति पुनः पुनः चिराय ॥ ९ ॥)

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, संयोजनों मे फँसे लोग पुनः पुनः चिरकाल तक दुःख पाते हैं ।

३४३. तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो ।
तस्मा तसिणं विनोदये भिक्खु आकङ्खी विरागमत्तनो ॥१०॥

(तृष्णया पुरष्कृताः प्रजाः परिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।
तस्मात् तृष्णां विनोदयेद् भिक्षुराकांक्षी विरागमात्मनः ॥ १० ॥)

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं । अपनी मुक्ति की आकांक्षा रख भिक्षु तृष्णा को दूर करे ।

वेणुवन विभन्तक (भिक्षु)

३४४. यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति ।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥११॥

(यो निर्वाणार्थी वनाऽधिमुक्तो वनमुक्तो वनमेव धावति ।
तं पुद्गलमेव पश्यथ मुक्तो बन्धनमेव धावति ॥११॥)

जो सांसारिक बन्धनों से छूट, (तप—) वन में वास करता हुआ फिर (तप—) वन को छोड़ संसार-तृष्णा (=वन) की ही ओर दौड़ता है, उस व्यक्ति को (वैसे ही) जानो जैसे कोई (बन्धन) से मुक्त (पुरुष) फिर बन्धन की ही ओर दौड़े ।

जेतवन — बन्धनागार

३४५. न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥१२॥
(न तद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा यद् आयसं दारुजं पर्वजं च।
सारवद्-रक्ता मणिकुंडलेषु पुत्रेषु दारेषु च याऽपेक्षा ॥ १२ ॥)

यह जो लोहे, लकड़ी या रस्सी का बन्धन है, उसे बुद्धिमान् (जन) दृढ़ बन्धन नहीं कहते, (वस्तुतः दृढ़ बन्धन हैं जो यह) मणि, कुण्डल, पुत्र, स्त्री में इच्छा का होना है।

३४६. एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥१३॥
(एतद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा अपहारि शिथिलं दुष्प्रमोचनम्।
एतदपि छित्वा परिव्रजन्त्यनपेक्षिणः कामसुखं प्रहाय ॥ १३ ॥)

धीर पुरुष इसी को दृढ़ बन्धन, अपहारक शिथिल और दुस्त्याज्य कहते हैं, वह अपेक्षारहित हो, तथा काम-सुखों को छोड़, इस (दृढ़-) बन्धन को छिन्नकर प्रव्रजित होते हैं।

वेणुवन — खेमा (बिम्बिसार की रानी)

३४७. ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं
सयं कतं मक्कटकोव जालं।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा
अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय ॥ १४ ॥
(ये रागरक्ता अनुपतन्ति स्रोतः स्वयंकृतं मर्कटक इव जालम्।
एतदपि छित्वा व्रजन्ति धीरा अनपेक्षिणः सर्वदुःखं प्रहाय ॥ १४ ॥)

जो राग में अनुरक्त हैं, वह जैसे मकड़ी अपने बनाये जाल में पड़ती है, (वैसे ही) अपने बनाये स्रोत में पड़ते हैं। धीर (पुरुष) इस (स्रोत) को भी काट कर सारे दुःखों को छोड़ आकांक्षारहित हो चल देते हैं।

वेणुवन — उग्रसेन (श्रेष्ठी-पुत्र)

३४८. मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्स परागू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥१५॥

(मुंच पुरो मुंच पश्चात् मध्ये मुंच भवस्य पारगः ।
सर्वत्र विमुक्तमानसो न पुनः जातिजरे उपैषि ॥ १५ ॥)

भूत, भविष्यत् और वर्तमान के (सभी स्कन्धों को) त्याग दो, (उन्हें त्याग) भव को पार हो सभी से मुक्त मन वाला हो, फिर जन्म और जरा को नहीं प्राप्त होगे ।

जेतवन एक तरुण भिक्षु

३४९. वितक्कपमथितस्स जन्तुनो तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो ।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति एस खो दळ्हं करोति वन्धनं ॥१६॥
(वितर्क-प्रमथितस्य जन्तोः तीव्ररागस्य शुभाऽनुदर्शिनः ।
भूयः तृष्णा प्रवर्द्धते एष खलु दृढं करोति बन्धनम् ॥ १६ ॥)

जो प्राणी सन्देह से मथित, तीव्र राग से युक्त, शुभ ही शुभ (=सौंदर्य ही-सौंदर्य) देखने वाला है, उसकी तृष्णा और भी अधिक बढ़ती है, वह (अपने लिए) और भी दृढ़ बन्धन बनाता है ।

३५०. वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो ।
एस खो व्यन्तिकाहिनी एसच्छेच्छति मारबन्धनं ॥१७॥
(वितर्कोपशमे च यो रतोऽशुभं भावयते सदा स्मृतः ।
एष खलु व्यन्तीकरिष्यति एष छेत्स्यति मारबन्धनम् ॥ १७ ॥)

सन्देह के शान्त हो जाने में जो रत है सदा सचेत रह (जो) अशुभ (=कुरूपता) की भावना करता है, वह मार के बन्धन को छिन्न करेगा, तृष्णा का विनाश करेगा ।

जेतवन मार

३५१. निट्ठङ्गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो ।
अच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमोयं समुस्सयो ॥ १८ ॥
(निष्ठांगतोऽसंत्रासी वीततृष्णोऽनंङ्गणः ।
उत्सृज्य भवशल्यानि; अन्तिमोऽयं समुच्छ्रयः ॥ १८ ॥)

जिसने अर्हत्व पा लिया है, जो (राग आदि के त्रास से) निर्भीक है, जो तृष्णा-रहित और निर्मल है, जिसने भव के शल्यों को काट दिया, यह उसका अन्तिम देह है ।

३५२. वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बापरानि च ॥
स वे अन्तिमसारीरो महापञ्ञोति वुच्चति ॥ १९ ॥
(वीततृष्णोऽनादानो निरुक्तिपदकोविदो।
अक्षराणां सन्निपातं जानाति पूर्वापराणि च।
स वै अन्तिमशारीरो महाप्राज्ञ इत्युच्यते ॥ १९ ॥)

जो तृष्णा रहित, परिग्रह रहित, निरुक्ति और पद (=चार प्रतिसम्भिदा) का जानकार है, और जो अक्षरों को पहले पीछे रखना जानता है, वही अन्तिम शरीरवाला तथा महाप्राज्ञ कहा जाता है।

उरुवेला से वाराणसी के मार्ग में उपक (आजीवक)

३५३. सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं ॥२०॥
(सर्वाभिभूः सर्वविदहमस्मि सर्वेषु धर्मेष्वनुपलिप्तः।
सर्वं जहः तृष्णाक्षये विमुक्तः स्वयमभिज्ञाय कमुद्दिशेयम् ॥ २० ॥)

मैं (राग आदि) सभी को परास्त करनेवाला हूँ,सभी बातों का जानकार हूँ, सभी धर्मों (=तृष्णा, दृष्टि आदि) में अलिप्त हूँ, सर्वत्यागी हूँ, तृष्णा के नाश से मुक्त हूँ, (विमल ज्ञान को) अपने ही जानकर (मैं अब) किसको (अपना गुरु) बतलाऊँ ?

जेतवन शक्र (देवराज)

३५४. सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रतिं धम्मरसो जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥ २१ ॥
(सर्वदानं धर्मदानं जयति सर्वं रसं धर्मरसो जयति।
सर्वां रतिं धर्मरतिर्जयति तृष्णाक्षयः सर्वदुःखं जयति ॥ २१ ॥)

धर्म का दान सारे दानों में बढ़कर है, धर्म-रस सारे रसों से प्रबल है, धर्म में रति सब रतियों से बढ़कर है, तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है।

जेतवन अपुत्रक श्रेष्ठी

३५५. हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अञ्ञे' व अत्तनं ॥ २२ ॥

(घ्नन्ति भोगा दुर्मेधसं न चेत् पारगवेषिणः।
भोगतृष्णाया दुर्मेधा हन्त्यन्य इवात्मनः ॥ २२ ॥)

(संसार को) पार होने की कोशिश न करने वाले दुर्बुद्धि (पुरुष) को भोग नष्ट करते हैं, भोग-तृष्णा में पड़कर (वह) दुर्बुद्धि पराये की भाँति अपने ही को हनन करता है।

पाण्डुकम्बलशिला (देवलोक) अंकुर (देवपुत्र)

३५६. तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २३ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि रागदोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि वीतरागेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २३ ॥)

खेतों का दोष तृण है, प्रजा का दोष राग है इसलिये रागरहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

३५७. तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २४ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि द्वेषदोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि वीतद्वेषेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २४ ॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिये द्वेषरहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

३५८. तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २५ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि मोहदोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि वीतमोहेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २५ ॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष मोह है, इसलिए मोहरहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

३५९. तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २६ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि इच्छादोषेयं प्रजा।
तस्माद्धि विगतेच्छेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २६ ॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिए इच्छारहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

●

२५. भिक्खुवग्गो

जेतवन
पाँच भिक्षु

३६०. चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ।। १ ।।
(चक्षुषा संवरः साधुः, साधुः श्रोत्रेण संवरः ।
घ्राणेन संवरः साधुः, साधुः जिह्वया संवरः ।। १ ।।)

आँख का संवर (=संयम) भला है, भला है कान का संवर, घ्राण का संवर भला है, भला है जीभ का संवर ।

३६१. कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बथ संवरो ।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति ।। २ ।।
(कायेन संवरः साधुः, साधुः वाचा संवरः ।
मनसा संवरः साधुः, साधुः सर्वत्र संवरः ।
सर्वत्र संवृतो भिक्षुः सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ।। २ ।।)

शरीर का संवर भला है, भला है वचन का संवर, मन का संवर भला है, भला है सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर । सर्वत्र संवर युक्त भिक्षु सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

जेतवन
हंसघातक (भिक्षु)

३६२. हत्थसञ्ञतो पादसञ्ञतो वाचाय सञ्ञतो सञ्ञतुत्तमो ।
अज्झत्तरतो समाहितो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं ।।३।।
(हस्तसंयतः पादसंयतो वाचा संयतः संयतोत्तमः ।
अध्यात्मरतः समाहित एकः सन्तुष्टस्तमाहुर्भिक्षुम् ।। ३ ।।)

जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो घट के भीतर (=अध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला और संतुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं ।

जेतवन कोकालिक

३६३. यो मुखसञ्ञतो भिक्खु मन्तभाणी अनुद्धतो ।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥
(यो मुखसंयतो भिक्षुर्मंत्रभाणी अनुद्धतः ।
अर्थं धर्मं च दीपयति मधुरं च तस्य भाषितम् ॥ ४ ॥)

जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं होता है, अर्थ और धर्म को प्रगट करता है, उसका भाषण मधुर होता है ।

जेतवन धम्माराम (थेर)

३६४. धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति ॥ ५ ॥
(धर्मारामो धर्मरतो धर्मम् अनुविचिन्तयन् ।
धर्ममनुस्मरन् भिक्षुः सद्धर्मान्न परिहीयते ॥ ५ ॥)

धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करते, धर्म का अनुस्मरण करते भिक्षु सद्धर्म से च्युत नहीं होता ।

वेणुवन विपक्ष-सेवक (भिक्षु)

३६५. सलाभं नातिमञ्ञेय्य नाञ्ञेसं पिहयं चरे ।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खू समाधि नाधिगच्छति ॥ ६ ॥
(स्वलाभं नाऽतिमन्येत, नाऽन्येषां स्पृहयन् चरेत् ।
अन्येषां स्पृहयन् भिक्षुः समाधि नाऽधिगच्छति ॥ ६ ॥)

अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए । दूसरों के लाभ की चाह (=स्पृहा) नहीं करनी चाहिए । दूसरों के लाभ की चाह करने वाला भिक्षु समाधि को नहीं प्राप्त करता ।

३६६. अप्पलाभोपि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्ञति ।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं ॥ ७ ॥
(अल्पलाभोऽपि चेद् भिक्षुः स्वालाभं नाऽतिमन्यते ।
तं वै देवाः प्रशंसन्ति शुद्धाऽऽजीवम् अतन्द्रितम् ॥ ७ ॥)

चाहे अल्प ही लाभ हो, जो शुद्ध जीविकावाला और आलस्य रहित भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता है, उसकी देवता प्रशंसा करते हैं ।

जेतवन पाँच अग्रदायक ब्राह्मण

३६७. सब्बसो नामरूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥ ८ ॥
(सर्वशो नामरूपे यस्य नाऽस्ति ममायितम्।
असति च न शोचति सवै भिक्षुरित्युच्यते ॥ ८ ॥)

जिसकी नामरूप (=पञ्चस्कन्ध) में बिल्कुल ही ममता नहीं, और जो (उनके) नहीं होने पर शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहा जाता है।

जेतवन बहुत से भिक्षु

३६८. मेत्ताविहारी यो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं संखारूपसमं सुखं ॥ ९ ॥
(मैत्रीविहारी यो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने।
अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥ ९ ॥)

जो मैत्री के साथ विहार करने वाला बुद्धशासन में प्रसन्न भिक्षु है, वह सभी संस्कारों को शमन करने वाले और सुखमय पद को प्राप्त करता है।

३६९. सिञ्च भिक्खु ! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बानमेहिसि ॥ १० ॥
(सिंच भिक्षो ! इमां नावं सिक्ता ते लघुत्वं एष्यति।
छित्वा रागं च द्वेषं च ततो निर्वाणमेष्यसि ॥ १० ॥)

भिक्षु ! इस नाव को उलीचो, उलीचने पर यह तुम्हारे लिये हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को छिन्नकर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होगे।

३७०. पञ्च छिन्दे पञ्च जहे पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु ओघतिण्णोति वुच्चति ॥ ११ ॥
(पंच छिन्धि पंच जहीहि पंचोत्तरं भावय।
पचसंगाऽतिगो भिक्षुः, 'ओघतीर्णं' इत्युच्यते ॥ ११ ॥)

(सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श, कामराग और व्यापाद इन) पाँच (अवर भागीय संयोजनों) को काटे, (रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या इन) पाँच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को छोड़ दे। आगे (उनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा इन) पाँच (इन्द्रियों की)

भावना करे, (राग, द्वेष, मोह, मान और मिथ्यादृष्टि इन) पाँच के संसर्ग को अतिक्रमण कर चुका भिक्षु (काम, भव, दृष्टि अविद्या के) ओघों (=बाढ़ों) से पार हुआ कहा जाता है।

३७१. झाय भिक्खु ! मा च पमादो मा ते कामगुणे भमस्सु चित्तं।
मा लोहगुलं गिली पमत्तो मा कन्दि दुक्खमिदन्ति डय्हमानो ॥१२॥
(ध्याय भिक्षो ! मा च प्रमादः, मा ते कामगुणे भ्रमतु चित्तम्।
मा लोहगोलं गिल प्रमत्तः मा क्रन्दीः दुःखमिदमिति दह्यमानः ॥ १२ ॥)

भिक्षु ! ध्यान में लगो, मत प्रमाद करो, तुम्हारा चित्त मत भागों के चक्कर में पड़े। प्रमत्त होकर मत लोहे के गोले को निगलो। '(हाय !) यह दुःख' कहकर दग्ध होते (पीछे) मत तुम्हें क्रन्दन करना पड़े।

३७२. नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बानसन्तिके ॥ १३ ॥
(नाऽस्ति ध्यानमप्रज्ञस्य प्रज्ञा नाऽस्त्यध्यायतः।
यस्मिन् ध्यानं च प्रज्ञा च स वै निर्वाणाऽन्तिके ॥ १३ ॥)

प्रज्ञाविहीन (पुरुष) को ध्यान नहीं होता है, ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं हो सकती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा (दोनों) हैं, वही निर्वाण के समीप है।

३७३. सुञ्ञागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रति होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥ १४ ॥
(शून्यागारं प्रविष्टस्य शान्तचित्तस्य भिक्षोः।
अमानुषी रतिर्भवति सम्यग् धर्मं विपश्यतः ॥ १४ ॥)

शून्य गृह में प्रविष्ट, शान्तचित्त भिक्षु को भली प्रकार से धर्म की विपश्यना करते हुए अमानुषी-रति (=आनन्द) होती है।

३७४. यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं।
लभति पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं ॥ १५ ॥
(यतो यतः संमृशति स्कन्धानां उदयव्ययम्।
लभते प्रीतिप्रामोद्यं अमृतं तद् विजानताम् ॥ १५ ॥)

जैसे जैसे भिक्षु (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन) पांच स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, (वैसे ही वैसे वह) ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोद (रूपी) अमृत को प्राप्त करता है ।

३७५. तत्रायमादि भवति इध पञ्ञस्स भिक्खुनो ।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि पातिमोक्खे च संवरो ।
भित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते ॥ १६ ॥

(तत्राऽयमादिर्भवतीह प्राज्ञस्य भिक्षोः ।
इन्द्रियगुप्तिः सन्तुष्टिः प्रातिमोक्षे च संवरः ।
मित्राणि भजस्व कल्याणानि शुद्धाजीवान्यतन्द्रितानि ॥ १६ ॥)

इस धर्म में प्रज्ञावान् भिक्षु को आदि में यह करना है—इन्द्रियसंयम, संतोष और प्रातिमोक्ष की रक्षा । शुद्ध जीविका वाले, निरालस तथा भले मित्रों का साथ करे ।

३७६. पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया ।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥ १७ ॥

(प्रतिसंस्तारवृत्तस्याऽऽचारकुशलः स्यात् ।
ततः प्रामोद्यबहुलो दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ १७ ॥)

जो सेवा-सत्कार के स्वभाव वाला तथा आचार पालन में निपुण है, वह सानन्द दुःख का अन्त करेगा ।

जेतवन   पाँच सौ भिक्षु

३७७. वस्सिका पिय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥ १८ ॥

(वर्षिका इव पुष्पाणि मर्दितानि प्रमुंचति ।
एवं रागं च द्वेषं च विप्रमुंचत भिक्षवः ॥ १८ ॥)

जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही भिक्षुओ ! राग और द्वेष को छोड़ दो ।

जेतवन शान्तकाय (थेर)

३७८. सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तोति वुच्चति ॥ १९ ॥

(शान्तकायो शान्तवाक् शान्तिमान् सुसमाहितः।
वान्तलोकाऽऽमिषो भिक्षुः 'उपशान्त' इत्युच्यते ॥ १९ ॥)

शरीर और वचन से शान्त, भली प्रकार समाधियुक्त, शान्ति सहित तथा लोक के आमिष को वमन कर दिये हुए भिक्षु को 'उपशान्त' कहा जाता है।

जेतवन नंगलकुल (थेर)

३७९. अत्तना चोदयत्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि ॥ २० ॥

(आत्मना चोदयेदात्मानं प्रतिवसेदात्मानं आत्मना।
स आत्मगुप्तः स्मृतिमान् सुखं भिक्षो ! विहरिष्यसि ॥ २० ॥)

जो अपने ही आपको प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा, वह आत्म-गुप्त (=अपने द्वारा रक्षित) स्मृतिमान् भिक्षु सुख से विहार करेगा।

३८०. अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सञ्ञमयत्तानं अस्सं भद्रं'व वाणिजो ॥ २१ ॥

(आत्मा ह्यात्मनो नाथ आत्मा ह्यात्मनो गतिः।
तस्मात् संयमयात्मानं अश्वं भद्रमिव वणिक् ॥ २१ ॥)

मनुष्य अपना स्वामी आप है, अपने ही अपनी गति है, इसलिए अपने को संयमी बनावे, जैसे कि सुन्दर घोड़े को बनिया (संयत करता है)।

वेणुवन वक्कलि (थेर)

३८१. पामोज्जबहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं संखारूपसमं सुखं ॥ २२ ॥

(प्रामोद्यबहुलो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने।
अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥ २२ ॥)

बुद्ध-शासन में प्रसन्न बहुत प्रमोदयुक्त भिक्षु संस्कारों को उपशमन करने वाले सुखमय शान्तपद को प्राप्त करता है।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) सुमन (श्रामणेर)

३८२. यो हवे दहरो भिक्खु युञ्जति बुद्धसासने।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ॥ २३ ॥
(यो ह वै दहरो भिक्षुर्युक्ते बुद्धशासने।
स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान् मुक्त इव चंद्रमा ॥ २३ ॥)

जो दहर (=अल्पवयस्क)—भिक्षु बुद्ध-शासन में संलग्न होता है, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है।

●

२६. ब्राह्मणवग्गो

जेतवन

एक बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण

३८३. छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण ।
सङ्खारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण ।। १ ।।
(छिन्धि स्रोतः पराक्रम्य कामान् प्रणुद ब्राह्मण !
संस्कारणां क्षयं ज्ञात्वाऽकृतज्ञोऽसि ब्राह्मण ।। १ ।।)

ब्राह्मण ! (तृष्णा के) स्रोत को काट दे, पराक्रम कर (और) कामनाओं को दूर कर दे । ब्राह्मण ! संस्कारों के क्षय को जानकर अकृत (=निर्वाण) का साक्षात्कार कर लोगे ।

जेतवन

बहुत से भिक्षु

३८४. यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो ।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो ।। २ ।।
(यदा द्वयोर्धर्मयोः पारगो भवति ब्राह्मणः ।
अथाऽस्य सर्वे संयोगा अस्तं गच्छन्ति जानतः ।। २ ।।)

जब ब्राह्मण दो धर्मों (=शमथ और विपश्यना) में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी बन्धन (=संयोग) अस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

मार

३८५. यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति ।
वीतद्दरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३ ।।
(यस्य पारं अपारं वा पारापारं न विद्यते ।
वीतदरं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३ ।।)

जिसके पार (=आँख, कान, नाक, जीभ, काया, मन), अपार (=रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म) और पारापार (=मैं और मेरा) नहीं हैं, जो निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन कोई ब्राह्मण

३८६. झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४॥
(ध्यायिनं विरजसमासीनं कृतकृत्यं अनास्रवम्।
उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम्॥ ४॥)

जो ध्यानी, निर्मळ, आसनबद्ध (=स्थिर), कृतकृत्य, आश्रव रहित है, जिसने उत्तमार्थ (=निर्वाण) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) आनन्द (थेर)

३८७. दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नाद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा॥ ५॥
(दिवा तपत्यादित्यो रात्रावाभाति चन्द्रमा।
सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः।
अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा॥ ५॥)

दिन में सूरज तपता है, रात्रि में चन्द्रमा प्रकाश करता है। (आभूषणों से) अलंकृत होने पर राजा तपता है, ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है और बुद्ध रात-दिन (अपने) तेज से तपते हैं!

जेतवन कोई ब्राह्मण प्रव्रजित

३८८. बाहितपापोति ब्राह्मणो समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितोति वुच्चति॥६॥
(वाहितपाप इति ब्राह्मणः समचर्यः श्रमण इत्युच्यते।
प्राव्रजयन्नाऽऽत्मनो मलं तस्मात् प्रव्रजित इत्युच्यते॥ ६॥)

जिसने पाप को धोकर बहा दिया है, वह ब्राह्मण है। जो समता का आचरण करता है, वह श्रमण है, (चूँकि) उसने अपने (चित्त-) मलों को हटा दिया, इसीलिए वह प्रव्रजित कहा जाता है।

जेतवन सारिपुत्र (थेर)

३८९. न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति॥ ७॥

(न ब्राह्मणं प्रहरेत् नाऽस्मै मुञ्चेद् ब्राह्मणः ।
धिग् ब्राह्मणस्य हन्तारं ततो धिग् यस्मै मुंचति ॥ ७ ॥)

ब्राह्मण (निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिए और ब्राह्मण को भी उस (प्रहारदाता) पर (कोप) नहीं करना चाहिए । ब्राह्मण को जो मारता है उसे धिक्कार है और धिक्कार है उसको भी जो (उसके लिए) कोप करता है ।

३९०. न ब्राह्मणस्सेतद किञ्चि सेय्यो यदा निसेधो मनसो पियेहि ।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो ततो सम्मति एव दुक्खं ॥८॥
(न ब्राह्मणस्यैतद् अंकिचित् श्रेयो यदा निषेधो मनसा प्रियेभ्यः ।
यतो यतो हिंस्रमनो निवर्तते ततस्ततः शाम्यत्येव दुःखम् ॥ ८ ॥)

ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थों) से मन को हटा लेता है, जहाँ-जहाँ से मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ-वहाँ से दु:ख (अवश्य) ही शान्त हो जाता है ।

जेतवन महाप्रजापति गौतमी

३९१. यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं ।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ९ ॥
(यस्य कायेन वाचा मनसा नाऽस्ति दुष्कृतम् ।
संवृतं त्रिभिः स्थानैः, तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥)

जिसके मन, वचन और काय से दुष्कृत (=पाप) नहीं होते, (जो इन) तीनों ही स्थानों से संवर-युक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन सारिपुत्र (थेर)

३९२. यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं ।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो ॥ १० ॥
(यस्माद् धर्मं विजानीयात् सम्यक्-संबुद्ध-देशितम् ।
सत्कृत्य तं नमस्येद् अग्निहोत्रमिव ब्राह्मणः ॥ १० ॥)

जिस (आचार्य) से सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे (वैसे ही) सत्कार-पूर्वक नमस्कार करे, जैसे अग्निहोत्र को ब्राह्मण ।

जेतवन जटिल ब्राह्मण

३९३. न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥
(न जटाभिर्न गोत्रैर्न जात्या भवति ब्राह्मणः ।
यस्मिन् सत्यं च धर्मश्च स शुचिः स च ब्राह्मणः ॥ ११ ॥)

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि (=पवित्र) और वही ब्राह्मण है ।

वैशाली (कूटागारशाला) एक पाखंडी ब्राह्मण

३९४. किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥
(किं ते जटाभिः दुर्मेधः ! किं तेऽजिनशाट्या ।
आभ्यन्तरं ते गहनं बहिः परिमार्जयसि ! ॥ १२ ॥)

हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तेरा क्या (बनेगा, और) मृगचर्म के पहनने से तेरा क्या ? भीतर (मन) तो तेरा (राग आदि मलों से) परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

राजगृह (गृध्रकूट) किसा गोतमी (थेरी)

३९५. पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मि झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥
(पांशुकूलधरं जन्तुम् कृशं धमनिसन्ततम् ।
एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥)

जो पांशुकूल (=फटे चीथड़ों से बना चीवर) को धारण करता है, जो दुबला-पतला और नसों से मढ़े शरीरवाला है, जो अकेला वन में ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन एक ब्राह्मण

३९६. न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।
'भो वादि' नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

(न चाऽहं ब्राह्मणं ब्रवीमि योनिजं मातृसंभवम् ।
'भो वादी' नाम स भवति स वै भवति सकिंचनः ।
अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥)

माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसी को मैं ब्राह्मण नहीं कहता । यदि वह धन-सम्पन्न है, तो केवल 'भो वादी' है । मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही और त्यागी है ।

राजगृह (वेणुवन) उग्रसेन (श्रेष्ठी पुत्र)

३९७. सब्बसञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
सङ्गातिगं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १५ ॥
(सर्वसंयोजनं छित्वा यो वै न परित्रस्यति ।
संगाऽतिगं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥)

जो सार संयोजनों (=बन्धनों) को काटकर, (तृष्णा से) नहीं डरता है, उस (राग आदि के) संग और आसक्ति से विरत को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन दो ब्राह्मण

३९८. छेत्वा नन्दि वरत्तञ्च सन्दामं सहनुक्कमं ।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १६ ॥
(छित्वा नन्दिं वरत्रां च सन्दानं सहनुक्रमम् ।
उत्क्षिप्तपरिघं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १६ ॥)

नद्धा (=क्रोध), रस्सी (=तृष्णा), पगहे (=६२ प्रकार की दृष्टियाँ), और जाबे (=अनुशय) को काटकर तथा जूये (=अविद्या) को फेंक जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन) (अक्कोसक) भारद्वाज

३९९. अक्कोसं बधबन्धञ्च अदुट्ठो यो तितिक्खति ।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १७ ॥
(अक्रोशन् बल-बंधं च अदुष्टो यस्तितिक्षति ।
क्षान्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १७ ॥)

जो बिना दूषित (चित्त) किये गाली, वध, और बन्धन को सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसके बल (=सेना) का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन) सारिपुत्र (थेर)

४००. अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सुतं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १८ ॥
(अक्रोधनं व्रतवन्तं शीलवन्तं अनुश्रुतम् ।
दान्तं अन्तिमशरीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणं ॥ १८ ॥)

जो क्रोध न करने वाला, व्रती, शीलवान्, अनुत्सुक, दान्त (=संयमी), और अन्तिम शरीर वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन उप्पलवण्णा (थेरी)

४०१. वारि पोक्खरपत्ते'व आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिप्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १९ ॥
(वारि पुष्करपत्र इव, आराग्र इव सर्षपः ।
यो न लिप्यते कामेषु तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणं ॥ १९ ॥)

कमल के पत्ते पर जल और आरे की नोंक पर सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन कोई ब्राह्मण

४०२. यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २० ॥
(यो दुःखस्य प्रजानातीहैव क्षयमात्मनः ।
पन्नभारं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २० ॥)

जो यहीं (=इसी जन्म में) अपने दुःख के विनाश को जान लेता है, जिसने अपने बोझ को उतार फेंका और जो आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (गृध्रकूट) खेमा (भिक्षुणी)

४०३. गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २१ ॥

(गंभीरप्रज्ञं मेधाविनं मार्गामार्गस्य कोविदम् ।
उत्तमार्थमनु प्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। २१ ।।)

जो गम्भीर प्रज्ञावाला मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम अर्थ (=निर्वाण) को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन (पभारवासी) तिस्स (थेर)

४०४. असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। २२ ।।
(असंसृष्टं गृहस्थैः अनागारेश्चोभाभ्याम् ।
अनोकसारिणं अल्पेच्छं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। २२ ।।)

गृहस्थ और बेघर वाले दोनों ही से जो संसर्ग नहीं रखता है, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा अल्पेच्छ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन कोई भिक्षु

४०५. निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। २३ ।।
(निधाय दण्डं भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च ।
यो न हन्ति न घातयति तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। २३ ।।)

चर-अचर (सभी) प्राणियों में प्रहार-विरत हो, जो न मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन चार श्रामणेर

४०६. अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तादण्डेसु निब्बुतं ।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। २४ ।।
(अविरुद्धं विरुद्धेषु, आत्तदण्डेषु निवृत्तम् ।
सादानेष्वनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। २४ ।।)

जो विरोधियों के बीच विरोध रहित है, जो दण्डधारियों के बीच (दण्ड-) रहित है, संग्रह करने वालों में जो संग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन) महापन्थक (थेर)

४०७. यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। २५ ।।

(यस्य रागश्च द्वेषश्च मानो म्रक्षश्च पातितः ।
सर्षप इवाऽराग्रात् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २५ ॥)

आरे के ऊपर सरसों की भाँति, जिसके (चित्त से) राग, द्वेष, मान, म्रक्ष, (=अमरख) फेंक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन) पिलिन्द वच्छ (थेर)

४०८. अकक्कसं विञ्ञापनिं गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २६ ॥
(अकर्कशां विज्ञापनीं गिरं सत्यां उदीरयेत् ।
यया नाऽभिषजेत् किंचित् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २६ ॥)

जो ऐसे अकर्कश, सार्थक तथा सत्य-वचन को बोले, जिससे कुछ भी पीड़ा न होवे; उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन कोई स्थविर

४०९. योध दीघं व रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियते तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २७ ॥
(य इह दीर्घं वा ह्रस्वं वाऽणुं स्थूलं शुभाऽशुभम् ।
लोकेऽदत्तं नादत्ते तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २७ ॥)

जो दीर्घ, ह्रस्व, मोटी या पतली, शुभ अथवा अशुभ—संसार में (किसी-भी) बिना दी गई वस्तु को नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन सारिपुत्र (थेरी)

४१०. आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च ।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २८ ॥
(आशा यस्य न विद्यन्तेऽस्मिन् लोके परस्मिन् च ।
निराशयं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २८ ॥)

इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशायें (=तृष्णा=चाह) नहीं रह गई हैं, जो आशा-रहित और आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन महामोग्गल्लान (थेर)

४११. यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २९ ॥

(यस्याऽऽलया न विद्यन्त आज्ञायाऽकथंकथी ।
अमृतावगाधमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। २९ ।।)

जिसे आलय (=तृष्णा) नहीं है, जो जानकर संशय-रहित हो गया है तथा जिसने पैठकर अमृत-पद निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम) रेवत (थेर)

४१२. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा ।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३० ।।
(य इह पुण्यं च पापं चोभयोः संगं उपात्यगात् ।
अशोकं विरजं शुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३० ।।)

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया है, जो शोकरहित, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन चन्दाभ (थेर)

४१३. चन्दं'व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३१ ।।
(चन्द्रमिव विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम् ।
नन्दीभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३१ ।।)

जो चन्द्रमा की भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल है तथा जिसकी सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

कुण्डकोलिय (कुण्डधान वन) शीवली (थेर)

४१४. यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३२ ।।
(य इमं प्रतिपथं दुर्गं संसारं मोहमत्यगात् ।
तीर्णः पारगतो ध्यायनेजोऽकथंकथी ।
अनुपादाय निर्वृतः तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३२ ।।)

जिसने इस दुर्गम संसार, (जन्म-मृत्यु के) चक्कर में डालने वाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया है, जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जेतवन सुन्दरसमुद्र (थेर)

४१५. योध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे ।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३३ ॥
(य इह कामान् प्रहायाऽनागारः परिव्रजेत् ।
कामभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ३३ ॥)

जो यहाँ भोगों को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन) जटिल और जोतिय

४१६. योध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे ।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३४ ॥
(य इह तृष्णां प्रहायाऽनागारः परिव्रजेत् ।
तृष्णाभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ३४ ॥)

जो यहाँ तृष्णा को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, जिसका तृष्णा और जन्म नष्ट हो गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन) एक नट-पुत्र

४१७. हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा ।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३५ ॥
(हित्वा मानुषकं योगं दिव्यं योगं उपात्यगात् ।
सर्वयोगविसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ३५ ॥)

जो मानुषी बन्धनों को छोड़, दिव्य बन्धनों को भी छोड़ चुका है, जो सभी बन्धनों से रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन) एक नट-पुत्र

४१८ हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३६ ॥
(हित्वा रतिं चाऽरतिं च शीतीभूतं निरूपधिम् ।
सर्वलोकाऽभिभुवं वीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ३६ ॥)

---

१. जोतिय स्थविर को भी भगवान् ने इसी गाथा का उपदेश दिया था ।

रति और अरति को छोड़ जो शान्त और क्लेश रहित है, (जो ऐसा) सर्वलोक विजयी वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन   वङ्गीस (थेर)

४१९. चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३७ ।।
(च्युतिं यो वेद सत्त्वानां, उपपत्तिं च सर्वशः ।
असक्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३७ ।।)

जो प्राणियों की च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, जो आसक्ति रहित सुगत (सुन्दरगति को प्राप्त) और बुद्ध (=ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२०. यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा ।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३८ ।।
(यस्य गतिं न जानन्ति देव-गंधर्व-मानुषाः ।
क्षीणास्रवं अरहन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३८ ।।)

जिसकी गति को देवता, गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणाश्रव और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)   धम्मदिन्ना (भिक्षुणी)

४२१. यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ३९ ।।
(यस्य पुरश्च पश्चाच्च मध्ये च नाऽस्ति किंचन ।
अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।। ३९ ।।)

जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्य में कुछ नहीं है; जो अकिंचन और परिग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन   अंगुलिमाल (थेर)

४२२. उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।। ४० ।।

(ऋषभं प्रवरं वीरं महर्षि विजितवन्तम् ।
अनेजं स्नातकं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणं ॥ ४० ॥)

जो ऋषभ (उत्तम), प्रवर (=श्रेष्ठ), वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन देवङ्गिक (ब्राह्मण)

४२३. पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति ।
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनी ।
सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४१ ॥

(पूर्वनिवासं यो वेद स्वर्गाऽपायं च पश्यति ।
अथ जातिक्षयं प्राप्तोऽभिज्ञाव्यवसितो मुनिः ।
सर्वव्यवसितव्यवसानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ४१ ॥)

जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और अगति (=अपाय) को जिसने देख लिया है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो चुका है, जिसकी प्रज्ञा पूर्ण हो चुकी है, जिसने अपना सब कुछ पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

●

बोधिनी

(शब्दानुक्रम से)

अकिञ्चन—राग, द्वेष और मोह रहित ।

अनुशय—कामराग, भवराग, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान, मिथ्या-दृष्टि, विचिकित्सा (=सन्देह) और अविद्या—ये सात अनुशय हैं ।

आभास्वर—रूप लोक की एक देवजाति ।

अयातन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन—ये छः भीतरी आयतन हैं, वैसे ही रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म—ये छः बाहरी ।

आर्य—स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् को आर्य कहते हैं ।

आश्रव—कामाश्रव, भवाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव—ये चार आश्रव हैं । पाँच कामगुण सम्बन्धी राग कामाश्रव हैं । रूप और अरूप भवों में उत्पन्न होने का छन्दराग, ध्यान की इच्छा, शाश्वत-दृष्टि सहगत उत्पन्न राग, भवों के लिए प्रार्थना भवाश्रव है । पूर्वान्त-अपरान्त वाली बासठ प्रकार की दृष्टियाँ दृष्टाश्रव हैं । दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपदा, पूर्वान्त, अपरान्त, पूर्वापरान्त तथा प्रतीत्य समुत्पाद—इन आठ बातों के अज्ञान को अविद्याश्रव कहते हैं । चूँकि ये चारों आश्रव अर्हत् में नहीं होते, इसलिए वे आश्रव-मुक्त कहे जाते हैं ।

इन्द्र—यह तावतिंस देवलोक का राजा है । यों तो तावतिंस देवलोक में उत्पन्न सभी इन्द्र कहे जाते हैं, फिर भी देवराज इन्द्र जो उस देवलोक का अधिपति होता है, उसे देवेन्द्र शक्र कहते हैं । इन सभी इन्द्रों की आयु दिव्य वर्ष की गणना के अनुसार दो हजार वर्ष की होती है, जो मनुष्य लोक की वर्ष-गणना से नब्वे लाख वर्ष हैं ।

इन्द्रकील—पूर्वकाल में नगरद्वार के ठीक सामने पत्थर का बहुत बड़ा स्तम्भ खड़ा किया जाता था, जिससे आक्रमण के समय शत्रु द्वार को तोड़ न सके । वह खूब दृढ़ और ठोस होता था । इसी से स्थिरता की उपमा उससे दी जाती थी ।

उपधि—स्कन्ध, काम, क्लेश और कर्म ।

ऊर्ध्वस्रोत—यह अनागामी की अवस्था है । मनुष्य-योनि से च्युत होकर वह शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वहीं क्रमशः उच्च से उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर लेता है । इसी से उसे ऊर्ध्वस्रोत कहते हैं ।

ऋजुभूत—जिनमें किसी प्रकार की कुटिलता नहीं है । स्रोतापन्न से लेकर अर्हत् तक का यह नाम है ।

कायगता-स्मृति—अपने शरीर के विषयों में स्मृति । यह शरीर केश, रोम, नख, दांत, त्वक्, मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थिमज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आंत, उदरस्थ, पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=बर), आँसू, चर्बी, लार, पोटा, लसिका, मूत्र और मस्तक में मस्तिष्क—इन बत्तीस गन्दगियों से भरा हुआ है । इस प्रकार मनन करने से शरीर के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है और मुक्ति की ओर प्रवृत्ति होती है । इस प्रकार मनन करके इनके विषय में सतत जागरूक रहने को कायगता-स्मृति कहते हैं ।

क्षीणाश्रव—जिनके चारों आश्रव क्षीण हो गये हों=अर्हत् ।

छत्तीसस्रोत—अठारह धातु बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से छत्तीस ।

थेरी—स्थविरा, वृद्ध भिक्षुणी ।

नामरूप—व्यक्ति मानसिक और शारीरिक—इन दो अवस्थाओं का पुञ्ज है, उन्हें नाम और रूप कहते हैं । वहाँ जो कुछ सूक्ष्म-पुञ्ज है, वह सब नाम है और जो स्थूल है, वह सब रूप । वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान---ये नाम की चार अवस्था हैं और शेष रूप । इस प्रकार व्यक्ति की अवस्थाओं के साधारणतः पाँच पुञ्ज दीख पड़ते हैं, उन्हें ही 'पञ्च स्कन्ध' भी कहते हैं ।

निर्वाण—परमसुख मोक्ष (=मुक्ति) का नाम ही निर्वाण है । राग, द्वेष, मोह का क्षय ही निर्वाण है ।

पञ्चस्कन्ध—देखो, 'नामरूप' ।

प्रतिसम्भिदा—इसका शाब्दिक अर्थ है । जो वहाँ ज्ञानप्रभेद के अर्थ में

प्रयुक्त है। यह चार प्रकार की होती है—(१) अर्थ प्रतिसम्भिदा (२) धर्म-प्रतिसम्भिदा (३) निरुक्ति प्रतिसम्भिदा और (४) प्रतिभान प्रतिसम्भिदा। नाना अर्थों का उसके लक्षण-विभावन आदि करनेमें समर्थ अर्थप्रभेद में लगा हुआ ज्ञान अर्थ-प्रतिसम्भिदा हैं। ऐसे ही धर्म, निरुक्ति (=व्याकरण) और प्रतिभान को भी जानना चाहिए।

प्रातिमोक्ष—भगवान् ने भिक्षुओं को जिन नियमों का पालन करने को आदेश दिया है, उन्ही के संग्रह को प्रातिमोक्ष (=पातिमोक्ख) कहते हैं। उन नियमों का पालन करना प्रत्येक भिक्षु का परम कर्त्तव्य है।

पाँच नीवरण—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य और विचिकित्सा; ये पाँच नीवरण हैं। जब तक ये रहते हैं, तब तक समाधि का लाभ नहीं हो सकता। इसी से इन्हें नीवरण (=चित्त का ढक्कन) कहते हैं।

मार—ये तीन प्रकार के होते हैं—(१) क्लेश मार (२) मृत्यु या मरण मार और (३) देवपुत्र मार। लोभ, द्वेष, मोह, मान दृष्टि, विचिकित्सा, स्त्यान, औद्धत्य, अ-ह्री, अन्-अपत्रपा (=असंकोच) ये दस क्लेश हैं। इन्हीं को क्लेश-मार कहते हैं। जिस समय और जिस हेतु से आदमी की मृत्यु होती है, उसे मरणमार कहते हैं। देवपुत्र मार कामावचर के छठें देवलोक पर निर्मित वशवर्ती में रहता है, द्रोही राजकुमार की भाँति वहाँ एक प्रादेशिक शासक होता है, इससे सब डरा करते हैं, क्योंकि यह कुशल कर्मों का विरोधी है, अधिकाँश मारकदेव-पुत्र च्युत होकर नरक में पड़ते हैं। दूषी आदि मारों की दुर्गति यहाँ द्रष्टव्य है।

मार्ग—इसे आर्य अष्टांगिक मार्ग कहते हैं, जो ये हैं—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाणी, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि। इनमें पहले दो ज्ञान सम्बन्धी प्रज्ञा हैं बीच के आचार सम्बन्धी शील हैं और अन्तिम दो योग सम्बन्धी समाधि हैं।

मार्ग-फल—यह आठ होते हैं—चार मार्ग और चार फल। जैसे—

(१) स्रोतापत्ति मार्ग, (२) स्रोतापत्ति फल,(३) सकृदागामी मार्ग, (४) सकृदागामी फल, (५) अनागामी मार्ग, (६) अनागामी फल, (७) अर्हत् मार्ग और (८) अर्हत् फल ।

मिथ्या दृष्टि—आत्मा में विश्वास करना तथा किसी भी पदार्थ को नित्य और सुख करके मानना । शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि के साथ ६२ प्रकार की दृष्टियाँ मिथ्या दृष्टि हैं ।

शाश्वत और उच्छेद दृष्टि—मरने के बाद कूटस्थ वही स्थिर आत्मा=जीव एक शरीर से निकलकर दूसरे में प्रवेश करता है—ऐसी मिथ्या धारणा को शाश्वत दृष्टि कहते हैं और मरने के बाद व्यक्तित्व का लोप हो जाता है, वह नहीं रहता—ऐसी मिथ्या धारणा को उच्छेद दृष्टि कहते हैं । इन दोनों अन्तों को छोड़; बौद्ध दर्शन मध्य का मार्ग बताता है । यह कि, चित्त की संतति प्रतीत्यसमुत्पन्न हो एक योनि से दूसरी योनि में प्रवाहित होती है । जिस प्रकार पहले पहर की प्रदीप-शिखा दूसरे पहर में बिल्कुल वही नहीं रहती है और न अत्यन्त भिन्न हो जाती है, उसी तरह जन्म लेनेवाला न तो बिल्कुल वही है और न भिन्न, किन्तु उसका तादात्म्य संततिगत है ।

शून्य और अनिमित्त—समाधिस्थ हो योगी जब सत्ता मात्र के अनित्य, दुःख अनात्म स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है, तब उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है और वह शरीर त्याग के बाद फिर जन्म नहीं ग्रहण करता । यही अर्हत् का पद है । निर्वाण तो एक ही है, किन्तु प्राप्त करने के मार्ग के भेद से इसके तीन नाम हैं । जिस योगी ने अनात्म का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है, उसके इस निर्वाण को 'शून्य' कहते हैं । जिसने अनित्य का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है, उसके इस निर्वाण को 'अनिमित्त, तथा जिसने दुःख का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है, उसके इस निर्वाण को 'अप्रणिहित' कहते हैं ।

शैक्ष्य—अर्हत् पदको नहीं प्राप्त हुए स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् मार्ग प्राप्त शैक्ष्य कहे जाते हैं, क्योंकि अभी उन्हें सीखना है ।

श्रामणेर—भिक्षु होने का प्रत्याशी बौद्ध श्रमण, जिसे भिक्षु-संघ ने अभी उपसम्पन्न नहीं किया है।

संयोजन—सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामराग, रूपराग, अरूपराग, प्रतिघ, मान, औद्धत्य और अविद्या—ये दस संयोजन है। जब तक प्राणी इनसे बँधा रहता है, तब तक आवागमन के चक्र से नहीं छूटता।

समथ विपश्यना—पाँच नीवरणों को दूर करके जो समाधि प्राप्त होती है; उसे 'समथसमाधि' कहते हैं और अनित्य, अनात्म, दुःख का विचार कर जो संयोजनों का प्रहाण करता है, उसे 'विपश्यना-समाधि' कहते हैं। पहले को लौकिक और दूसरे को लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं।

संबोध्यङ्ग—स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा ये सात सम्बोध्यंग हैं। इन सातों को सिद्ध करके ही कोई परमज्ञान का लाभ कर सकता है। सम्बोधि (=ज्ञान) का अंग होने से ही इन्हें सम्बोध्यंग कहते हैं।

विशेष

९७ वीं गाथा दो अर्थ वाली है। इसका शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है—"जो श्रद्धाहीन, अकृतज्ञ, सेंध मारने वाला, अवकाशहीन, निराश है, वही उत्तम पुरुष है।" किन्तु जो यथार्थ अर्थ है, वह गाथा के साथ दिया गया है।

मिलाओ—

गाथा १०९ : मनु, २, १२१

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

गाथा १२९ : हितोपदेश १, २

प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः॥

गाथा १३१ : मनु, ५, ४५

यो हिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥

महाभारत—

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।

धम्मपद

धम्मपद पाली साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थरत्न है। बौद्ध-संसार में इसका उसी प्रकार प्रचार है जिस प्रकार कि हिन्दू-संसार में *गीता* का। यद्यपि *गीता* का एक ही कथानक है और श्रोता भी एक ही; किन्तु *धम्मपद* के विभिन्न कथानक और विभिन्न श्रोता हैं। *गीता* का उपदेश अल्पकाल में ही समाप्त किया गया था, किन्तु *धम्मपद* तथागत के पैंतालीस वर्षों के उपदेश से संगृहीत है।

धम्मपद २६ वर्गों में विभक्त है और प्रत्येक वर्ग का वर्ण्य विषय भिन्न है। इसमें कुल ४२३ गाथायें हैं, जिन्हें भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के समय से लेकर परिनिर्वाण पर्यन्त समय-समय पर उपदेश देते हुए कहा था। *धम्मपद* एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी प्रत्येक गाथा में बुद्धधर्म का सार भरा हुआ है। जिन गाथाओं को सुनकर आज तक विश्व के अनगिनत दुःख-संतप्त प्राणियों का उद्धार हुआ है। इन गाथाओं में शील, समाधि, प्रज्ञा, निर्वाण आदि का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन है, जिन्हें पढ़ते हुए एक अद्‌भुत संवेग, धर्मरस, शान्ति, ज्ञान और संसार-निर्वेद का अनुभव होता है। *धम्मपद* बौद्ध साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। *धम्मपद* की गाथायें सरल और मर्मस्पर्शिनी हैं। ये अनायास ही कंठाग्र भी हो जाती हैं।

आज की विषम-परिस्थिति में *धम्मपद* के प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जितना ही इसका प्रचार होगा, उतना ही मानव-जगत् का कल्याण होगा।

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, बंगलौर,
वाराणसी, पुणे, पटना

मूल्य : रु० ४५